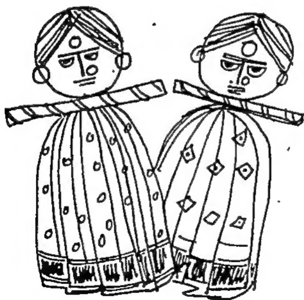
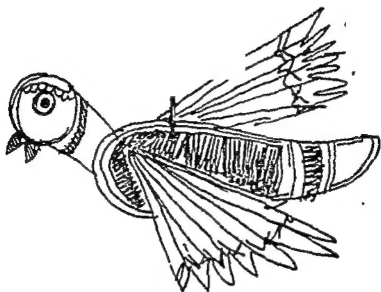
# केदार नाथ अग्रवाल





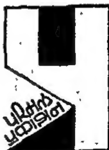
☐ प्रकाशक : परिमल प्रकाशन
१७, एम० आई० जी०, बाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद–२११००६

☐ मुद्रक : भार्गव मुद्रण केन्द्र
बाई का बाग, इलाहाबाद–२११००३

☐ आवरण व सज्जा : इम्पैक्ट, इलाहाबाद–२११००१

☐ मूल्य : २५ रुपये

☐ प्रथम संस्करण : १९८५ ईसवी




परिमल प्रकाशन
१७, एम आईजी. बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर
इलाहाबाद २११००६ फोन-५२७०७१

स्वर्गीय श्री नरोत्तम नागर

को

स्मृति में

## प्रकाशकीय

प्रगतिशील कवि श्री केदार नाथ अग्रवाल की अब तक पन्द्रह पुस्तकें हमने प्रकाशित की हैं। इस प्रकार हमें श्री केदार नाथ अग्रवाल का एकमात्र प्रकाशक होने का सौभाग्य प्राप्त है। अतः केदार जी की सारी रचनाएँ अपने प्रिय पाठकों के सामने लाने की भी हमारी पूरी जिम्मेदारी हो जाती है, ऐसा मैं महसूस करता हूँ।

केदार जी की अब तक पुस्तकाकार अप्रकाशित रचनाओं की खोज और पुस्तकाकार रूप देने का भार सहर्ष डॉ० अशोक त्रिपाठी ने स्वीकार किया। डॉ० अशोक त्रिपाठी के संयोजन में दो कविता पुस्तकें—'कहे केदार खरी-खरी' और 'जमुन जल तुम' प्रकाशित हो चुकी हैं। तीसरी कविता पुस्तक 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' प्रकाशनाधीन है।

'पतिया' भी इसी प्रकाशन-योजना का अगला पुष्प है। यह उपन्यास और एक अधूरा उपन्यास तथा तीन कहानियाँ केदार जी ने अपने रचनाकाल के प्रारम्भिक चरण में लिखी थीं, जिनकी पाडुलिपियाँ डॉ० त्रिपाठी ने उनकी पुरानी रचनाओं के संकलन के दौर में प्राप्त की थीं।

मात्र पाँच अध्यायों का एक अधूरा उपन्यास 'बैल बाजी मार ले गये' तथा तीन कहानियाँ अलग से शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं।

केदार जी की इस कथा-सम्पदा से यह पता चलता है कि उनके अन्दर कवि और निबंधकार के साथ एक कोमल और जन-पक्षधर कथाकार भी है, लेकिन कविता के आगे उन्होंने कथाकार को तवज्जो नहीं दी, अन्यथा कविता की ही तरह कथा के क्षेत्र में भी उनकी भूमिका निश्चय ही महत्वपूर्ण होती।

—शिव कुमार सहाय

# १

पतिया का व्याह बहुत छोटी आयु में ही हो गया था। उसे कुछ याद नहीं पडता कि उसकी शादी कब हुई थी। वह पांच-सात साल पहले तक की बातें अपने छोटे-से दिल के अन्दर टटोल-टटोल कर किसी प्रकार पहचान लेती थी। पर कभी 'दुलहिन' बनने की बात का पता नहीं पाती। हां, लोगो के कहने-सुनने, अपना घर छोड़ कर पराये घर मे रहने, हाथ मे कांच की, जरा-से ठसके से टूट जाने वाली, कमजोर चूड़ियाँ पहनने, मुँह को मोटी धोती के घूँघट में छिपा रखने, माथे पर मोम की टिकुली लगाने, माँग में सिंदूर की रेखा खींचने, और इसी तरह की अन्य बहुत-सी बातो की वजह से पतिया को इसका पता चलता—कि वह पछौहाँ गाँव की लडकी कमासिन गांव की बहू है।

उमर बारह-तेरह वर्ष से ज्यादा न होगी। शरम-लिहाज की फिकर न थी। ससुराल के घर मे भी उसका सिर खुल-खुल जाया करता और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य से चारों ओर घूरने लगती। लड़कपन अभी तक नही गया। नैहर की सुध और वहाँ खुले आसमान के नीचे, आपा भूल कर घूमना, लड़कों के साथ धमा-चौकड़ी मचाना और नाराज होने पर उन्हे चपतियाना, उसे हर घड़ी तड़पाया करता।

यौवन—इसने पतिया को नही छुआ! उसका शरीर अरहर के

पेड़-सा दिखता—दुबला-पतला, साधारण-सा, सुन्दरता के नाम पर सूना। रस-भरे पौडेवाली बात उसमे नही थी। अंगों मे उभार का पता नही चलता। लगता, जैसे सावन के बादल इधर देर से आवेंगे।

इस समय वह ससुराल से भाग कर नैहर जा रही थी। दोनो जगहों मे दो कोस का अन्तर था। सीधी सड़क उसने नही पकड़ी। लोगों की आँख बचा कर, विलबिला-सी, खेतों-खड्डो और ऊबड़-खाबड़ पगडंडियो को पार करती, दौडती, गिरती-फाँदती, बढ़ी जा रही थी। कुछ दूर चली जाती, तब फिर जल्दी से गरदन मोड कर, दूर तक देखने वाली अपनी आँखों से, पीछे की ओर देख लेती। किसी को आता न देख निरापद घर पहुँचने की आशा बलवती हो उठती। उसकी मैली-सी लट्ठे की धोती वस में न आती, उसकी देह से खिसक कर इधर-उधर हो जाती। कभी सिर बिलकुल खुल जाता। उसके उलझे बाल मैदान की हलकी हवा मे संसार को नापने लगते, और फिर अपने ही में उलझ कर रह जाते। कभी धोती का पल्ला खिसक कर झरबेरियों के काँटो से छिद जाता। वह रुक जाती। छुड़ा कर फिर आगे बढती।

अचानक माथे पर हाथ गया। कुछ सूना-सूना-सा लगा। देखा, टिकुली नही है। उतावली मे कही गिर पडी होगी। कुछ भी अफसोस या शंका नही हुई। कभी चूड़ियाँ खनक उठती। भयभीत हो उन्हे बार-बार हाथो के ऊपरी हिस्से पर चढा लेती। कोई इधर-उधर खेतों में कही बैठा उसे ताक तो नही रहा? मेड़ों पर चढ़, क्षण-भर के लिए इधर-उधर, चारों तरफ देखा। फिर आगे चल दी। जरा भी तो दु:ख नही था उसे। ज्यो-ज्यो आगे कदम पड़ते, उसकी खुशी छलकती आती। ठोकर खाकर दो-तीन जगह गिर भी पड़ी। चूड़ियाँ टूटीं। सिर्फ एक हाथ में एक रह गई। दूसरा हाथ सूना हो गया। लेकिन रुकी नही। हाथो को मलती केवल चलती ही गई। दूर खड़े

पेड़—इमली के, पीपल के, और नीम-बबूल के—जैसे उसका रास्ता रोकने के लिये सड़क के बीचोंबीच अड़ कर खड़े हो जाते, फिर उसे निकट आता देख, खिसक कर जल्दी से एक किनारे हो जाते, और वह आगे बढ़ जाती।

शाम का समय। पश्चिम में दिन ढल रहा था। सुनहला रङ्ग छाया था। पैर के पास की मिट्टी, आस-पास के पेड़ और आसमान, सब सुन्दर रंगीन हो गये थे। लौटते हुए पक्षी भी चोला बदले दीखते थे। पतिया भी पश्चिम की लाली में रँग गई। मैली धोती का रंग निखर कर सुनहला हो गया। हृदय में चम्पई प्रकाश उतर आया। आँखों में जगमगाहट जग गई। ओठों और कपोलों पर तो जैसे लाल गुलाब की कलियाँ प्रतिबिम्बित हो रही थीं।

पतिया का हृदय—मानो अँधेरे में दिया जल उठा हो। ससुराल के चित्र अनायास ही आँखों के सामने घूम गए। टूटा-सा कच्चा घर, कुआँ, गोबर-कंडों का ढेर, और दो-चार बकरियाँ। इन सब को वह मिटा देना चाहती थी। वह वहाँ नहीं जाना चाहती। उसे अपने ससुराल से नफरत थी। पति का नहीं, जैसे दैत्य का घर था वह। वहाँ नहीं रहेगी वह। मायके में ही रहेगी। मायका बहुत प्यारा है। यहाँ सब कुछ अपना-ही-अपना—पराया कुछ भी नहीं। मायका की खुली हवा में आँखें तैरतीं, हृदय हुमकता।

पछोहाँ के जाने-पहचाने पेड़ और खेत मिलने लगे। गहरी मुहब्बत जाग उठी। पतिया अब बेफिकर हो गई। भूल गई अपने तन और मन को। इन्हें देखते ही चैन मिला। सुस्ती भग गई। हृदय प्रसन्न होकर आँखों और कपोलों पर नाचने लगा। पीछे गरदन फेरकर देखा। ससुराल का चिह्न तक नहीं दिखाई दिया। पंजों के बल खड़ी होकर देखा—कुछ भी तो नहीं दिखाई देता। खुश हो गई। दोनों हाथ सीने के पास आकर मिल गए। हँसी बरस पड़ी।

अलसाती चाल से वह घर की तरफ बढ़ी। लोग क्या कहेंगे? कहें जो उनके जी में आए। वह पछाँहाँ की है, पछाँहाँ आई है। वह कमासिन में नहीं रहना चाहती। कोई जबरदस्ती उसे वहाँ नहीं रख सकता। इतने दिन वह वहाँ रह ली, यही कौन कम है। माँ उसे देखकर फूली न समायेगी। पिता, भाई, बहन—सब-के-सब उसे गले लगाकर खूब खुश होंगे। माँ ने कहा था, जल्दी बुला लेंगी। देखते ही माँ की सारी परेशानी हल हो जायगी। घर पहुँचते ही घर का कोना-कोना झाँकेगी। झाड़ू लेकर सारा कूड़ा-करकट—उसी गैरहाजिरी में न जाने कितना जमा हो गया होगा—निकाल कर बाहर घूरे पर फेंक देगी। पानी भरने के कच्चे घड़े सिर और कमर पर रख कुएँ पर आएगी और गाँव की औरतों को अचरज में डाल देगी। उनसे कहेगी :

"देखो, मैं आ गई। तुम कहती थी, ससुराल जाकर मैं मायके को भूल जाऊँगी।' लेकिन पतिया ऐसी नहीं है। उसे तुमने जरा भी नहीं समझा......!"

आसमान की स्याही अभी गाढ़ी नहीं हुई थी। सोने का उजाला जरूर मिट चला था, पर अभी इधर-उधर दिखाई दे रहा था। विदा होने से पूर्व, पतिया का गृह-प्रवेश देखने के लिए, जैसे वह भी ठिठक कर खड़ा रह गया था!

२

घर में मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी। काले आले में लौ स्थिर भाव से प्रकाश दे रही थी। रोशनी हर चीज पर पूरी तरह से नहीं, बल्कि अपने साथ कुछ अँधेरा लिए पड़ रही थी। ऐसा नहीं कि कोई अनजान आदमी एकाएक भीतर आकर चीजों को तुरन्त पहचान ले। रोज आने-जानेवाला प्राणी ही, बिना ठोकर खाये, घर में पाँव रख सकता था।

"ओ माँ···!" कह पतिया भीतर घुसी।

बाप मचिया पर बैठा आँगन में हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। चौंक कर बोल उठा :

"पतिया बेटी, तू कैसे ?"

भाई झिंगुरी खाट पर पड़ा था। वह भी उठकर बैठ गया। अच-रज में कह उठा :

"अरे, तू आ गई !"

माँ भी चूल्हे पर रोटी पकाते-पकाते बोली :

"अरे, पतिया आ गई !"

"आ गई मैं—तुम लोगों के पास आ गई—यह देखो, तुम्हारी पतिया आ गई !"

"पतिया आ गई !" माँ ने कहा, और तवे को जलता

आँगन में निकल आई।

बाप ने पूछा :

"अरे बिटिया, तू कैसे आई ?"

भाई ने पूछा :

"अकेले ही चली आई क्या ?"

इन सब सवालों का जवाब न दे पतिया माँ के पास उससे सट कर खड़ी हो गई। फिर बोली :

"मन मेरा, मैं चली आई। किसी के साथ नहीं, अपने-आप अकेले चली आई हूँ !"

"अरे, यह क्या हुआ बेटी ?" माँ ने पतिया को सिर से पाँव तक देखते हुए कहा—"न माथे पर टिकुली, न हाथ में चूड़ियाँ। यह तू कैसे आई है ? देखते हो पूरन के बाप, कुछ समझ में नहीं आता ! तू खड़ी क्या है, बैठकर सब हाल बता।"

चूल्हा अपनी जीभ लपलपा कर तवे को चाट रहा था। तवे पर पड़ी रोटी अपने भाग्य को कोस रही थी। पतिया ने एक बार घबराहट की नजर से अपनी माँ की ओर देखा। फिर कहने लगी :

"मैं बड़ी मुश्किल से आई हूँ। रोज तुम्हारे बुलाने की बाट जोहती थी। तुम तो मुझे भूल ही गईं। आखिर अपने-आप चल दी। मैं तुम लोगों के बिना नहीं रह सकती। सच, मुझे बड़ी रुलाई आती थी। सोचती थी, यहाँ से कभी छुटकारा न पाऊँगी। माँ, मैंने बड़ा अच्छा किया जो चली आई।"

कहते-कहते उसने अपनी गीली आँखें पोंछ लीं।

"पागल कहीं की ! भला, इस तरह कहीं भागा जाता है ? ससुराल कोई दूसरा घर थोड़े ही है। बड़ी नासमझ है। अच्छा तो चल, रोटी खा ले। पूरन, तू भी खा ले।"

माँ ने दोनों को परोस दिया। वह रोटी बेलती जाती थी और

कहती जाती थी :

"पूरन, तेरा बहनोई जाने क्या सोचता होगा ? घर-भर परेशान होगा कि अचानक पतिया को कौन उठा ले गया । वे सोचते होंगे..."

"हाँ-हाँ, बड़े आये सोचने वाले !" मुँह गुस्से से लाल कर पतिया ने कहा—"मेरी जान आफत मे आ गई । इतने दिन वहाँ क्या रही, जैसे मौत के मुँह मे रही । दिन-रात बस अकेले पडी-पड़ी सड़ा करती थी । यहाँ आकर मुँह खोलने की आजादी मिली है । अगर भाग न आती तो माँ, तुम्हारी यह बिटिया मर जाती । तुम्हारा प्यार तुम्हारे पास ही धरा रह जाता । भैया, कल तुमसे अगर कोई कमासिन गाँव का आकर पूछे तो कह देना, मैं यहाँ नही आई । सच, तुम कह देना, मैं मर गई । बापू, जरा एक रोटी और खा लूँ, तब तुम्हारा हुक्का बहुत अच्छी तरह भर कर दूँगी । देखना, पीने मे कैसा भला लगता है । मैं अभी कुछ भूल नहीं गई हूँ !"

इतने मे माँ डिब्बी लेकर भीतर की कोठरी से कुछ चूडियाँ और टिकुली का एक पत्ता ले आई । बोली :

"ले, इसे पहन ले !"

बिना हुज्जत किए पतिया ने दोनों हाथो मे चूडियाँ पहन ली । मोम लगा कर एक टिकुली भी माथे पर चिपका ली ।

माँ ने फिर कहा :

"अब कभी न उतारना ये सोहाग-चिह्न, समझी !"

"ले, मेरा हुक्का तो भर ला !" बाप ने पतिया के हाथ में हुक्का थमाते हुए कहा ।

दौड़कर पतिया तमाखू लेकर भरने लगी । लाल-लाल चिनगारियाँ चिमटे से दबा-दबा कर चिलम पर रख रही थी । एक-दो हाथ से भी उठा कर रख दीं ।

"लो बापू, हुक्का भर गया । पिओ ।" उसने कहा ।

खाना सब खा चुके थे। माँ भर बाकी थी। उसने भी खाना शुरु किया। पूरन फिर अपनी खाट पर लेट गया। माँ खाती जाती थी, और पतिया से बातें करती जाती थी। हुक्के का धुआँ चिलम की आँच मे उठता हुआ दिखता, फिर थोड़ी दूर उठ कर खो जाता।

मा ने पतिया से पूछा .

"तुझे कोई भागते देख लेता तो...?"

पतिया ने कहा :

"तो मैं फिर कभी न आ पाती !"

"तुझे वहाँ कौन दु:ख था ?"

"मेरा अपना वहाँ कोई न था माँ और..."

"पागल नही तो। वह घर तो तेरा अपना है। यह घर तेरा नहीं, तेरे भाई का है। अभी तू कुछ नही समझती, आगे चल कर समझेगी।"

"नही माँ, यही मेरा घर है। वह घर तो पराया है। तुम्हारा कहना गलत है माँ। तुम मुझे बहकाती हो। मैं सब समझती हूँ।"

"सयानी है न जैसे—छोटी-सी तो है, और पुरखिन की तरह बात करती है। समझ होती तो भला कमासिन से काहे को भागती ?"

"माँ, अगर मैं यह जानती कि तुम भी ऐसा कहोगी तो मैं यहाँ कभी न आती, वही किसी कुएँ में डूब मरती। मुझे चोट लगती है। माँ होकर तुम ऐसी बातें करती हो। मेरा यही घर है माँ, वह नहीं।"

माँ ने कुल्ला किया और दोनो माँ-बेटी एक खाट पर पड़ कर फिर बातचीत करने लगी। ढिबरी बुझ गई थी। रात के अँधियारे में केवल दोनों के दिल उजाला किये थे।

"हाँ बेटी, तेरा कहना ठीक है। जब मैं अपनी आँखे पीछे की ओर फेर कर बड़ी दूर तक ताकती हूँ तो मुझे भी याद आती है कि एक दिन मैं भी तेरी ही तरह सोचती थी। अपना घर बड़ी मुश्किल से

छूटता है । दूसरा घर बड़ी मुश्किल से अपना बनता है । पर आज मेरा यही घर है । मेरी सारी उमर यहीं बीती, और जितने दिन बाकी है, वह भी यहीं बीत जायेंगे । कुछ दिनो बाद तू भी सब समझ जायेगी ।"

यह कह माँ ने पतिया को अपने गले से लगा लिया, और हलकी-हलकी थपकी देते हुये चुप हो गई । अपने-पराये का सब भेद माँ की थपकियो ने भुला दिया । पतिया चुपचाप पड़ी रही । न हिली, न डुली । उसे इसका भी पता नही चला कि इसी अवस्था में पड़े-पड़े उसे कब नींद आ गई ।

पतिया सो गई । माँ अभी भी जाग रही थी । उसकी आँखों मे नींद नहीं थी ।

## ३

दूसरे दिन सवेरा होते ही पतिया मिट्टी के घड़े सिर पर रख पानी भरने कुएँ की ओर चली। रास्ते में दो-एक सहेलियों के घर पड़ते थे। उन्हें भी बुला लिया और बातचीत करती सब एक साथ कुएँ पर पहुँची। चारों घाटों पर गाँव की औरतें पानी खींच रही थी। घड़े जगत पर रख तीनों सहेलियाँ बात करने बैठ गईं। कुएँ के खम्भे की छाया उन्हें धूप से बचाये थी।

एक सहेली ने पतिया की मैली धोती की ओर इशारा करते हुए ताना कसा :

"क्या ससुराल से यही लाई है? अरे, आज पहले दिन तो नई-नई अच्छी-सी धोती पहनकर आती!"

दूसरी ने कचोटा :

"धोती न सही, चूड़ियाँ तो अच्छी-अच्छी चमकदार पहन कर आई है।"

पतिया बोली :

"अरे नहीं, मैं तो ससुराल से भाग कर आई हूँ। धोती जरूर वहाँ की है, पर ये चूड़ियाँ तो कल रात माँ ने पहनाई है।"

आश्चर्य से दोनों सहेलियाँ पूछ बैठी :

"अरे, तो क्या तेरी सास ने तुझे चूडियाँ भी नही पहनाकर भेजा। राम-राम, यह बड़ा असगुन किया !"

"अरे नही, उन्होंने तो पहना रखा था। रास्ते में टूट गई। बस, एक हाथ में एक ही रह गई !" समझाते हुए पतिया ने कहा।

"ऐसा क्या पेड़ों पर चढ़ती-कूदती आई है ? अरी वाह री पतिया, एक महीने में ही इतनी चंट हो गई !" इतरा कर एक ने चुटकी ली।

दूसरी कह बैठी :

"नही-नही, भूडोल आ गया था और यह जमीन में धँस गई थी। बड़ी मुश्किल से इसकी जान बची है। वह तो कहो कि पेड़ की जड़ पकड़ कर निकल आई, नही तो वहीं-की-वही गड़ी रह जाती। चूड़ियाँ तो रगड़ से टूट गईं !"

"तुम सब अपने ही मन की हाँके जाती हो, कुछ मेरी भी तो सुनो...!"

"हाँ-हाँ, कहो न !" दोनों सहेलियों ने एक स्वर मे पूछा।

"रास्ते में मैं गिर पड़ी, चूड़ियाँ टूट गई।" कहकर पतिया मुस्करा दी। दोनो सहेलियाँ भी खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर एक-दूसरे की ओर मतलब-भरी निगाहों से देखने लगी।

"एक बात पूछूं, अगर तू बताने को कहे...?" पहली ने पतिया से कहा।

"जरूर-जरूर !" दूसरी बोल उठी।

"नही, मैं ऐसे नही पूछती। पतिया कहे तो पूछूं।" पतिया की ओर आँख नचाते हुए पहली ने कहा।

"ऐसी कौन-सी बात पूछेगी ? कुछ कह भी तो !" पतिया ने जवाब दिया।

"कहीं उन्होंने ही तो नही झोटा पकड़कर तुझे घर से बाहर निकाल दिया !" दबे स्वर मे सबसे बड़ी सहेली ने कोंचा।

"जरूर यही बात है। तभी तो यह लूटी-खसोटी-सी दिखाई पड़ रही है !" दूसरी बोली।

"मेरी समझ में कुछ नही आता कि तुम दोनो क्या कह रहो हो ? आओ, पानी भरें। घाट खाली है।" पतिया ने पीछा छुड़ाते हुए कहा।

बड़ी सहेली ने रस्सी गरारी में डाल दी। बीचवाली ने घड़े का गला रस्सी के फँदे मे फँसाकर कुएँ में लटका दिया। घर्र-घर्र गरारी की आवाज होने लगी। बड़ी सहेली एक तरफ हुई; और दो एक तरफ। पानी खीचने लगी।

पतिया को बहुत दिन बाद सखी-सहेलियों के साथ पानी खीचने का अवसर मिला था। ससुराल में अकेले खीचना पड़ता था। कभी कभी सास के साथ भी, पर वहाँ सखियाँ न थी।

तीनों सिर और कमर पर अपने-अपने घड़े टिका घर की ओर चल दी। बातें होने लगी। बड़ी ने पूछा :

"तेरे घर में वहाँ कितने आदमी है ?"

"चार जने हैं। एक सास, उनके दो लड़के, और एक ननद।"

"सब कमाते हैं ?" मँझली ने पूछा।

"मेरे जेठ तो जरूर दो घरो मे पानी भरने जाते है। लेकिन 'उनके' बारे में कुछ नही जानती। वे घर में नही रहते। चाहे काम करते हो, चाहे न करते हों। सास मेरी बड़ी शौकीन है। ननद भी वैसी ही है। वह कभी ससुराल नही जाती, वही रहती है। जब जी में आया, काम मे जेठ का कुछ हाथ बँटा दिया, नही तो साज-सिंगार मे ही जुटी रहती है।"

"और तू क्या किया करती है ? तू भी अपने 'उनके' साथ कहीं काम करने जाती है, या अपनी सास-ननद की तरह...?"

'मैं तो घर में ही पिसा करती हूँ। सवेरे से ही आटा पीसना,

झाड़ना-बटोरना, फिर चौका-बरतन। सास-ननद मुझे दिन-भर फिरकी की तरह नचाती है। उनकी धोती पछाड़ना तक मेरे ही जिम्मे रहता है।"

"तभी तो तेरी ऐसी शकल निकल आई है। देखो न, कितनी दुबली हो गई है!" मँझली ने कहा।

"तू कभी अपने उनसे भी बातें करती थी?" कनखियों से देखते हुए बड़ी ने पूछा।

"मैं किसी की बातों में नहीं फँसती थी। जहाँ फँसी कि झिड़कियाँ पड़ने लगीं। मैं तो बस, चुपचाप, अपना काम करती रहती थी। इसके अलावा..."

"क्यों झूठ बोलती है? कभी न कभी तो!" ताज्जुब से मँझली ने पूछा।

"सच कहती हूँ। तूने मेरी पूरी बात तो सुनी ही नहीं। वह खाना खाने घर में आते, और फिर बाहर चले जाते। दिन-रात बस बाहर ही बाहर..."

"पतिया, तू अभी बहुत नासमझ है। तुझसे कोई क्या बात करे? देख लो मँझली को। दिन-रात अपने उनके ही राग अलापा करती है।" बड़ी ने तरंग में आकर कहा।

मँझली झेंप गई, और बड़ी ने अपनी झेंप को हँसी में उड़ा दिया। कुछ देर बाद बड़ी का घर आ गया। वह बीच में ही छूट गयी। मँझली और पतिया दोनों बातें करती कोलिया से आगे बढ़ीं।

"तूने अभी न सुना होगा कि बड़ी का पति नौकर हो गया है। चिट्ठी आई है, चिट्ठी। परसों बड़ी की माँ कह रही थी कि हमारे लाला (दामाद) बबेरू की तहसील में चपरासी हो गये हैं। तहसीलदार साहब के साथ रहते हैं।" मँझली ने कहा।

"तहसीलदार साहब तो बहुत बड़े आदमी होते हैं। बड़ी के तो

भाग खुल गये !"पतिया ने कहा।

"अब जल्दी ही उसका पति उसे लिवा ले जायगा। उसे यहाँ देहात में भला क्यों रखेगा? बवेरू बहुत बडा कस्बा है। वहाँ रोज बाजार लगता है। मोटर भी वहाँ चलती है।" लम्बी साँस छोड़ते हुए मँझली ने कहा।

"तूने कुएँ पर ही यह सब क्यों नही बताया? मैं वहीं उससे मुंह मीठा करने के लिए कहती। वह अभी जल्दी तो जानेवाली नही है?" पतिया ने पूछा।

"अभी तक तो जाने की कोई चरचा नही छिडी है। हाँ, बड़ी के मन में जरूर बवेरू की उथल-पुथल मची है।"

"क्या वह कुछ कहती थी?"

"नही, वह कहेगी क्या? पर उसे देखकर तो ऐसा जान पडता है, मानो वह बहुत खुश है। धरती पर उसके पाँव ही नहीं पड़ते!"

"तेरे पति क्या करते हैं, मँझली? तूने और सब तो बता दिया, पर यह छिपा रखा, क्यो?"

"मेरे...अभी वह कुछ नही करते। कहते थे, शायद मदरसे में पढ़ाने की नौकरी मिल जाय।"

"तेरे सास-ससुर कैसे है?"

"बडे भले है। खूब मेहनत करते हैं। मुझे कभी दुःख नही देते। लेकिन तुम सबकी जब याद आती है तो कुछ अच्छा नही लगता। बहन, कोई किसी का करम नही बाँट लेता। यों हम तीनो एक साथ की है, पर भाग सबके अलग-अलग है।" कह मँझली चुप हो गयी।

मँझली का घर आ गया। वह भी चली गयी। पतिया अकेली रह गयी। उसके हृदय मे जाने कैसा क्या होने लगा। रह-रहकर मँझली की बात उसके मन में उठ रही थी :

"यों हम तीनो एक साथ की है, पर भाग हम सबके अलग-अलग है!"

४

कमासिन आस-पास के गाँवों में सबसे बडा था। पहले यहाँ तहसील थी। अब टूट गई है। गाँव मे तीन तालाब है और एक मिडिल स्कूल हैं। दो पक्के मन्दिर और एक पक्की मस्जिद है। आबादी घनी है। कई पक्के कुएँ है। सबका पानी मीठा है। थाना है। अस्पताल मे वैद्य नाड़ी देखते है। मवेशियो के बेडने का फाटक है। पहले बड़ा डाकखाना भी था। रोज डाक आती-जाती थी। अब हफ्ते मे तीन दिन आती है।

ब्राह्मण-ठाकुरो की बस्ती काफी है। कई घर वैश्यो के भी हैं। एक महाजन का भी घर है। मौका पडने पर सब तरह का काम निकल जाता है। जमींदार पुराने ढंग के है। उन्हें तो बस अपना लगान चाहिए। गाँव के ब्राह्मण-ठाकुरो से उन्हे कोई खास मतलब नही। दूसरी जाति वालों पर उनका रोब है। अहीर-चमार और नीच जाति के लोग उनके पाँव चूमते हैं। दो-तीन घर सुनार, बढई और लोहार के भी है।

कपड़े की कई दुकानें हैं। अच्छा-से-अच्छा माल मिल जाता है। मिठाई उतनी अच्छी तो नही, पर खराब भी नही होती। ननका हलवाई की दुकान के पेडे, बडे पुरखो के जमाने से, बिना खोये के होते आये हैं। आज भी उनका वही हाल है। बरफी फिर भी अच्छी होती है। घी-दूध सस्ता और बे-मिलावट का होता है। रोज के काम की सभी फुटकर चीजें, किसी-न-किसी दुकान मे, मिल जाती है। डाक्टर

बर्मन की दवाएँ तक बिकती हैं। बुखार और जूड़ी उन्हें देख-देख कर कांपते रहते है।

नाई एक तो बहुत अच्छा था, पर पता नही, तहसील के टूटते ही वह कहाँ गायब हो गया। न जाने उसका छुरा टूट गया, या वह अपना धंधा ही छोड़ बैठा। दूसरा नाई महावीर है। वह भी एक ही है। पहले उसके उस्तरे में सान रहती थी, पर अब ज्यादातर गोठिल्ला रहता है। जब उसके कड़े हाथ गाल पर पड़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो कोई पत्थर रगड़ रहा है, और जब उसका पुराना छुरा चलता है तब तो यही मालूम होता है मानो कोई मैदान की घास छील रहा है।

धोबी अच्छा है, पर अब अच्छी धुलाई न मिलने की वजह से कपड़े साफ नही धोता। आज पहनो तो तीसरे दिन उतने ही मैले हो जाते हैं, जितने मैले कि धुलने से पहले थे।

हर दशहरे पर रामलीला होती है। नाटक के परदे हैं। कभी कभी नाटक खेला भी जाता है। लोग घरों में ताले डालकर सारी रात नाटक देखते हैं। टस-से-मस नही होते।

पतिया की ससुराल थाने के पीछे है। एक कच्चा मकान है। उसमें छोटा-सा आंगन है, तीन-चार कोठरियाँ और छोटे-छोटे दरवाजे हैं। खपरैल है। एक तरफ आंगन में तीन बकरियाँ बँधी हैं। उनकी मींगनी इधर-उधर पड़ी रहती है। दरवाजे के सामने, खटिया पर, पतिया की सास सुपारी और तमाखू का फंका लिया करती है। पतिया की ननद इधर-उधर पास-पड़ोस में बिजली-सी चमका करती है। शौकीन है। खाने-पीने की हौस है। ससुराल उसकी देहात में है। वहाँ कमासिन-सा सुख नही मिलता। इसी से यहो रहती है। बड़ा लड़का दो-एक घर में पानी भरने जाता है। पर पतिया का पति कुछ नही करता-धरता। पतिया की सास का गाँव के ठाकुर से कुछ लाग-लगाव है। ठाकुर साहब की बदौलत घर धूल में मिलने से बचा है।

पतिया की ननद मोहिनी घर में झाड़ू लगा और कूँचे को एक कोने में फेंक जले हुए बरतन माँजने बैठी है। मैली-सी चौड़े किनारे की धोती पहिने है। हाथ और पैरों मे चाँदी के गहने खनक रहे है। धोती का पल्ला सिर से उतरकर गरदन पर आ गया है। पीछे से एक बड़ा-सा जूड़ा उठा दिखता है। जूड़ा गोल घेरे में बँधा है। सामने से देखने पर सिर में सेंदुर-भरी चौड़ी-सी माँग दिखती है कानों में तरकियाँ, नाक मे पीतल की फुल्ली और गले मे रंगीन काँच और मूँगे के दानों से बनी दुलरी पड़ी है। बड़ी-बड़ी आँखों में काजल खिंचा है। दाहिनी ओर गाल पर एक तिल है। चेहरे पर तेल की चिकनाहट जवानी को चमका रही है। कोई कुरती या सलूका नही पहने है। माँजते वक्त, उसके दोनों उरोज, छलके पड़ते हैं। रंग ज्यादा गोरा नही, पर साँवले से कुछ निखरा हुआ है। हाथ में जूना है, और बरतन माँजते-माँजते बुरी तरह खीझ उठी है :

"अम्मा, भौजी को गये एक महीना हो गया। अब तो भैया को भेजकर बुला लो। मेरे तो हाथ घिसे जाते हैं। मुझसे यह सब नहीं होता !"

माँ ने सुपारी और तमाखू की पीक थूकते हुए कहा :

"बिटिया, तू तो जैसे नाजुक परी बन गई है। ऐसे बरतन ही कौन ज्यादा हैं !"

मोहिनी मुँह उठाकर तमतमाते स्वर में बोली :

"थोड़े हैं या बहुत, मैं यह कुछ नही जानती। अपनी भौजी को बुलाओ। जिसका काम, उसी को भाजे ! मुझसे यह सब नहीं होता !"

मोहिनी खड़ी हो गई। बरतनों को उठाकर एक साथ बालटी में डुबो दिया। फिर झुके-झुके, उन्हें धो-धोकर, एक तरफ पटकने लगी।

"मेरा ठेंगा बुलावे उसे। जैसे गई है, वैसे ही आ जावेगी। मैं

उसकी लौंडी थोड़े ही हूँ। मरने दे चुड़ैल को !" गुस्से में आकर माँ ने कहा।

"तो मैं भी अब बरतन न माँजूँगी, चाहे जो हो !" गिरते-पड़ते बरतनों को उठाकर भीतर ले जाते हुए मोहिनी ने कहा।

"तुझे करना हो कर, न करना हो न कर। मुझे इसकी परवाह नहीं है। आता होगा तेरा भाई। उसी से यह सब कहना !" सरौता चलाते हुए माँ ने कहा।

कुछ देर बाद एक-दूसरे के आगे-पीछे, नरायन और स्वामीदीन, आ गये। घर के भीतर पाँव रखते ही माँ ने हाथ नचाकर कहा :

"सुनते हो, दिन-भर दोनों, छैलचिकनिया बने, मटरगश्ती किया करते हो। घर का तो जैसे कुछ ख्याल ही नहीं है। लो, अपना घर सँभालो। मुझसे अब यह सहन नहीं होता। मोहिनी काम करते-करते मरी जाती है, और तुम लोगों के मुँह से आह तक नहीं निकलती। मेरी लड़की क्या घूरे में पैदा हुई है। तुम्हें जो कुछ सूझ पड़े, करो। आज से वह हरगिज काम नहीं करेगी।"

दोनों भाई असमय की इस गरज का कारण जल्दी न समझ सके, पर माँ के स्वभाव से दोनों परिचित थे। अधिक परेशान न हो दोनों ऐसे बने रहे मानो अगले क्षण ही यह सारा तूफान अपने-आप शान्त हो जाएगा।

नरायन स्वामी से बोला :

"स्वामी, यह बहुत बुरी बात है। देखो, अब मुझसे यह हाल नहीं देखा जाता।"

"तुम बिलकुल ठीक कहते हो। थोड़े दिनों को बहन आई, और तिस पर भी उसे पीसना पड़ता है। देखो न..."

यह कह स्वामी माँ के मुँह की ओर देखने लगा।

माँ से रहा न गया। आँखों में आँसू भर कर वह सबको कोसने

लगी। बीच-बीच में गाँव के ठाकुर रामदीनसिंह का यशगान भी करती जाती थी :

"तुम सब एक से हो। वह तो मरकर छुट्टी पा गये। परलोक में सुख से बैठे होंगे। मुझे अकेली छोड मेरी जान आफत में कर गये। यह न सोचा कि बिना पतवार के नैया कैसे किनारे लगेगी? बिटिया की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अरे, यह तो कहो कि ठाकुर रामदीन ने मेरी लाज रख ली। नही तो मैं तुम सबको यहीं छोड़ एक दिन कहीं जाकर डूब मरती!"

स्वामी और रामदीन, माँ को झोंकता छोड़, चुपचाप घर से बाहर खिसक गए।

५

कमासिन-तालाब के भीटे पर नीम का एक पेड़ है। स्वामीदीन लग्घी में हँसिया लगाये अपनी बकरियों के लिए हरी-हरी पत्तियाँ तोड़ रहा है। जमीन पर पत्तियों का ढेर लग गया है, पर अभी कुछ कमी है, इसी से पत्तियाँ तोड़ने का काम जारी है।

दोपहर का वक्त है। इधर-उधर सन्नाटा छाया है। तालाब के उत्तरी किनारे पर कुछ औरतें और आदमी सीढ़ियों पर नहा रहे हैं और जल भर-भर कर कमासिन देवी के ऊपर चढ़ा रहे हैं। पीपल का घण्टा ठन्न-ठन्न कर धरती और आसमान का माथा ठनका रहा है।

तालाब का पानी बिलकुल सोया है। एक भी लहर उसमे नहीं उठ रही है। न किसी मछली के उछलने का ही स्वर सुनाई देता है। मिट्टी के टूटे घड़ों की खपड़ी फेंक कर बच्चे भी इस समय छुलछुलिया नहीं छुड़ा रहे हैं। सूरज की धूप पानी में प्रकाश भर रही है।

भीटे से नीचे उतर कर बबेरू जानेवाली सड़क है। इससे दक्खिन चलकर खेत है और कुछ दूर पर अस्पताल दिखता है। सब तरफ सूना है।

"बस, अब हो गया!" लग्घा जमीन पर रखकर स्वामी ने पत्तियाँ समेट ली। फिर पत्तियों को कंधे पर रख, लग्घे को हाथ में ले, घर की तरफ चल पड़ा।

उसके मन में तरह-तरह की बातें उठने लगी। मखमली पाड़ की

धोती, मलमल का कुरता, तेल में डूबे काले बाल, कंधे पर हरी पत्तियाँ और हाथ में लग्घी, सब मिलकर जैसे एकाकार हो गए थे। बकरियों का पेट भरने से ही उसे फुरसत नहीं मिलती। उसके हाथ क्या इसलिए हैं कि बाँस को थामे कल्लाया करें? माँ भी क्या है। उससे इतना नहीं होता कि पत्तियाँ ही तोड़ लाया करे। उसे तो अपने पान-तमाखू से फुरसत नहीं मिलती। उसे बकरियों की क्या परवाह। पीने के लिये उसे कटोरा भर दूध मिल जाया करे, बस। रह गई मोहिनी, उसे माँ ने और भी सिर पर चढा रखा है। अगर वह वैसे ही सब काम कर लिया करे जैसे औरों की लड़कियाँ करती हैं तो यह आफत न रहे। ऐसी कामचोरी भी किस काम की। चारों तरफ बुलबुल-सी नाचा करती है। ससुराल में खूब दुतकारी जाती होगी। तभी जान बचाकर भाग आयी है। यहाँ कहे कौन, माँ की दुलारी है। ठीक माँ की नकल ही समझो और पतिया—वह भी तो भाग गयी। यह न सोचा कि यहाँ की देख-भाल कौन करेगा? सभी तो लाट साहब हैं ...!"

चलते-चलते स्वामी एकाएक रुक गया। मखमली पाड़ की धोती काँटों में उलझ गई थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसका मस्तिष्क काँटों में उलझ गया हो। वह झुँझला उठा। फिर धोती को छुड़ाकर आगे बढ़ा। अहीरों के टोले को पार कर अपने घर की तरफ मुड़ गया। मुँह पत्तियों के पीछे छिपा था, पर रास्ता साफ दिखाई पड़ रहा था। ठोकर खाने का अब कोई डर नहीं था।

तभी एक गाँव वाले ने जैसे रास्ता छेक कर आश्चर्य से पूछा :

"अरे स्वामी भैया, यह क्या? तुम और यह काम—तुम्हें भला यह क्या सूझा?"

स्वामी ने एक भारी साँस छोड़ी और बात टालने के लिये वे मन से उत्तर दिया :

"मैं ही हूँ। पत्तियाँ लेने गया था।"

दूसरा पड़ोसी चौपाल पर से बोल उठा :

"थक गये होगे स्वामी। यार, तुमने भी हद कर दी। मारो बकरियो को उधर। राम-राम, तुम भला यह सब क्यों करते हो ?"

तीसरा आदमी सामने से, मानो धरती फाड़कर, प्रकट हुआ। राम-राम करके बोला :

"ज़रा ठहरो ! लाओ, मैं तुम्हारा बोझा रख आऊँ। मुझसे यह न देखा जायगा।"

स्वामी ने कोई जवाब नहीं दिया। घर पहुँचकर नीम की पत्तियो का बोझ उसने एक ओर पटक दिया। फिर एक बकरी का कान पकड उसे अपनी ओर खीचते हुए बोला :

"ले, खा ले। अगर अब भी भूख न मिटे तो यह ले, मैं तेरे ही पास बैठा हूँ। मुझे भी चबा डाल। इस नरक से तो छुटकारा मिल जाएगा। लम्बे-लम्बे कानों से सुनती है कि नही, तुझी से कहता हूँ। में-में—में-में करती है, और बड़ा प्यार जताती है। ऐसा प्यार किस काम का। बस चले तो आज ही, नही-नही अभी, कान पकड कर तुझे इस घर से बाहर कर दूँ !"

मोहिनी ओट मे छिप कर खड़ी स्वामी का बड़बडाना सुन मन-ही-मन कुड़मुड़ा और कसमसा रही थी। जब नही रहा गया तो जल्दी से माँ के पास पहुँच उसका हाथ खीच कर घसीटते हुए बोली :

"अम्मा, आज भैया बेचारी बकरियों पर बहुत गुस्सा कर रहे है। बकरियों से कह रहे है—कान पकड़कर घर से बाहर निकाल दूँगा। जरा चलकर देखो न ?"

मोहिनी और उसकी माँ एक ओर खड़े होकर स्वामी की बातें सुनने लगी। कान पकड कर घर से निकालने की बात का जोर अब समाप्त हो गया था। वह अब कह रहा था :

"मैंने गलती की और बेहद गलती की। कान पकड़ कर इन्हें भला

कौन निकाल सकता है। इनके लिए यह जरूरी है कि ये यहाँ बँधी-बँधी खाया करें, और मींगनों के ढेर लगाया करें !"

मोहिनी के दिल में चुटकी लेने की उकसाहट हो रही थी। तभी माँ ने मोहिनी से कहा :

"बिटिया, लग्घा उठा कर खपरे पर रख दे। बीच में पड़ा है। किसी के पैर मे हँसिया न लग जाय।"

"पैर में क्या लगेगा, वह तो गले में लग चुका है। मेरे गले पर तो यह फिर ही चुका है। अब इसे क्या रखवाती हो !"

*स्वामी की इस बात पर मोहिनी और माँ दोनों हँस पडी।*

"हँसती हो ? ..खूब हँस लो...घर में हँसी...बाहर हँसी...मुझे कही चैन नहीं...मन होता है सब को—नहीं, अपने-आप को—चटनी की तरह पीस डालूं !"

"भैया ने अच्छी याद दिलायी, माँ ! आज आँवले की चटनी बनाऊँगी। खूब स्वाद आयेगा। सब जने खायेंगे।" मोहिनी ने कहा।

"जरूर बनाना। भैया से कह, आँवलों मे डालने के लिए कुछ नमक-मिर्च तो ले आये !"

"भैया, तुम तो बोलते ही नही ?"

"मेरा चुप रहना ही ठीक है। दुनिया बोले, तुम बोलो, मैं कुछ नही बोलूंगा–नहीं, मैं कुछ नही बोलूंगा ! मेरा जब यहाँ कोई नही है..."

स्वामी का यह रूप देख माँ कुछ सहम गयी। कुछ देर रुक कर धीरे से बोली :

"आज तुझे हो क्या गया है जो..."

मोहिनी ने भी अपनी माँ के स्वर में स्वर मिलाकर कहा :

*"ऐसा न कहो, भैया ! तुम भी क्या आदमी हो ?"*

"मैं...मैं...तुम ठीक कहती हो, मैं आदमी नहीं हूँ। मैं तो जानवर हूँ, जानवर ! मुझे भी पकड़कर खूँटे से बाँध दो और नीम की

पत्तियाँ खाने को डाल दिया करना । खींच-खींचकर मेरे कान भी लम्बे कर देना । यह सब कपड़े-लत्ते उतार लेना । मैं भी बकरियों की तरह ..!"

मोहिनी की माँ से अब नहीं रहा गया । तमक कर बोली :

"बहुत मुँह चढ़ गया है । दुनिया-भर का गुस्सा उतारने के लिए एक हम ही रह गई हैं । यह भी कोई बात है—हम तो मीठे मुँह बोलती हूँ; और तुम काटने को दौड़ते हो ।"

"तुम्हारा लड़का हूँ न, इसी से मुँहचढ़ा हूँ । तुम्हें न छेड़ूँ तो किसे छेड़ूँ । मुझे गैर कोचते हैं, मैं तुम्हें कोचता हूँ । तुमने मुझे पैदा क्यों किया ? तुम्हीं सारी कड़वाहट की जड़ हो । न तुम होतीं, न मैं होता...!"

"हाँ, न मैं होती, न तू होता ! नालायक कहीं का ! यही सुनना बाकी रहा था सो तूने आज यह भी कह डाला । न जाने कहाँ का कपूत मेरी कोख में आया । अपने करम को रो जो तुझे यहाँ घसीट लाया । मैंने तुझे इस दुनिया में थोड़े ही बुलाया था । बोलता क्यों नहीं, क्या तू मुझसे पूछ कर यहाँ आया था ? पैदा होते हैं अपने-आप, और दोष देते हैं अपने माँ-बाप को !" माँ ने जल-भुन कर कहा ।

स्वामी कुछ कहने जा रहा था, पर बात ओंठों तक आकर रह गयी । माँ की आँखों की ओर देख, वह सहम कर खड़ा रह गया ।

"देखता है कि नहीं," माँ ने लाल-लाल आँखें निकाल कर कहा— "अब तेरा इस घर में गुजारा नहीं है । जा, जहाँ तुझे जाना हो । मैं किसी की बात नहीं सह सकती । मैं तेरी लौंडी नहीं हूँ कि तू मुझे गाली दे और मैं चुपचाप पी जाऊँ, कुछ कहूँ नहीं । तूने मुझे आखिर समझ क्या रखा है ?"

मोहिनी चुपचाप खड़ी थी । एकाएक वह समझ नहीं सकी कि आज स्वामी और माँ क्यों पगला गये हैं ? माँ-बेटे की जहर में डूबी बातें सुनकर वह स्तब्ध रह गयी । उसकी जवानी का चंचल आँचल पतझड़

के पत्ते-सा निष्कम्प हो गया। सबसे अधिक उलझन हो रही थी उसे स्वामी को लेकर। जिस माँ के पेट से उसने जन्म लिया, उसी पर कैसे विष में बुझे बान वह छोड़ रहा था। बेटा ही जब अपनी माँ का नहीं होता तो फिर और कौन...!

मोहिनी इससे आगे कुछ और सोचने का साहस न कर सकी। उसने अपनी आँखें मूँद लीं और भीतर जाकर पड़ रही।

६

जमुना नदी के किनारे लखनपुर गाँव मे सिहवाहिनी देवी का मेला हर साल लगता है। दस-पांच कोस के इर्द-गिर्द के गाँव के लोग इस मेले में आते है दो-तीन दिन तक ठहरते है और सौदा-पाती लेकर, गठरी सिर पर धरे, पैदल या बैलगाड़ी मे, अपने-अपने घर वापस चले जाते हैं। मेले में कपड़े, गहने और बिसातखाने की दुकानों की भरमार रहती है। बरतन, मिठाई, चूड़ियो वगैरह की दुकानें भी खूब सजती हैं। बिक्री भी खूब होती है।

मेला जमुना के कगार के ऊपर लगता है। पेड़ों की छाया काफी रहती है। पानी की तकलीफ नही होती। सिहवाहिनी देवी का मन्दिर बहुत अच्छा नही बना है—किसी कुशल कारीगर ने इसका निर्माण नहीं किया है। इधर-उधर के राजगीरो ने ईंट-चूना के मेल से इसे बना लिया है। देवी की शक्ति उपासको को खीच ही लाती है। किसी प्रकार की बनावटी सुन्दरता की आवश्यकता नही पड़ती।

देवी बहुत ही सच्चा परचा देती हैं। सूनी कोखो को भरती हैं, रूठे जोड़ों को मिलाती हैं, शराबी पतियो को ठीक करती हैं, सौतिनों का झोंटा पकड़ कर खीचती है, क्रूर पतियों से पीछा छुड़ाती हैं, गरज यह कि सभी की इच्छा पूरी करती है। पतिया की माँ ने भी मानता मानी थी कि उसका सुहाग बना रहे, अपनी ससुराल का सुख वह देखे।

सवेरे का समय था। पूरन, उसकी माँ और पतिया तीनो जमुना मे डुबकी लगा, लोटों मे जल भर, देवी के मन्दिर की ओर जा रहे थे। तीनों ने भक्ति भाव से जल चढ़ा दिया, और थोडी दूर हट कर वहीं बैठ गये।

पतिया को बडा अचरज हुआ जब उसने देवी पर बकरे चढ़ते देखे। ओसारे मे खून ही खून। माँ ने उसमे अपनी उगॅली भिगोकर उसकी मॉग भरनी चाही। वह इसे सहन न कर सकी। माँ का हाथ झँझोड़ कर वह उठ खड़ी हुई। उसके मन में हो रहा था कि वह यहाँ से भाग कर कहीं दूर चली जाय।

माँ के हृदय में एक खटका-सा हुआ। पर उसने कहा कुछ नही।

आसमान और धरती पर धूप पूरी तरह फैल गई थी। मेले में चहल-पहल अच्छी तरह जग उठी। दूकानदारों ने गोलक सँभाले और सौदा बेचने लगे। ग्राहक पूरे मेले में चक्कर काटने लगे। छोटे-छोटे बच्चे खुश होकर खिलौनेवालो की दुकानो के सामने जमा हो गये और तरह-तरह के रङ्गीन खिलौनों को देखने लगे।

पूरन, पतिया और उसकी माँ भी मेला देखने चले। दर्शक इस तरफ से उस तरफ आ-जा रहे थे। इस समय कुछ खरीदना तो था नही, सिर्फ देखना-ही-देखना था। इसी से वे जहाँ खड़े हो जाते, खड़े ही रह जाते। जहाँ बैठ जाते, बैठे ही रह जाते। पूरी निश्चिन्तता थी। जल्दी किसी बात की न थी। एक जगह बैठकर तीनों ने गुड़ की जलेबी लेकर खायी। पानी पिया। फिर मेले के उस तरफ वे तीनों चले, जहाँ चक्करदार, ऊपर-नीचे, जाने-आनेवाले झूलने गडे हुए थे। पूरन सवार हुआ। उसकी माँ भी झूले में बैठ गयी। पर पतिया ने इन्कार कर दिया। वह खडी-खड़ी देखती रही।

पतिया को कुछ अच्छा नही लग रहा था। रह-रहकर उसकी आँखों के सामने सिंहवाहिनी देवी का दृश्य घूम जाता था। चारो ओर खून

ही खून ! और माँ का उसे उसकी माँग में भरना—उसे यदि पहले से पता होता तो वह कभी मेले में न आती !

झूलों के पास से चलकर तीनों अपने डेरे की तरफ चले। पतिया ने घुटने न टेक दिये होते तो अभी और घूमते। डेरे पर पहुँच कर रोटी बनी। कुछ देर आराम करने के बाद साँझ को फिर मेला घूमने चले। इस वक्त तमाशों की धूम थी। कोई जादू करता था, कोई हाथ की सफाई दिखाता था। ताशवाले अपना खेल दिखा रहे थे। तीनों यह सब देखते-देखते आखिर उस जगह पहुँचे जहाँ एक पंडाल के नीचे दो-तीन औरतों का बारी-बारी से नाच हो रहा था। तबला, मंजीरा और सारंगी बज रही थी। आदमियों की भीड़ ठसाठस जमा थी। वाह-वाह का स्वर ऊँचा हो रहा था। यह सब देखकर पूरन की आँखों में चमक भर गयी। एक लट्ठे से टिककर नाच देखने में वह अपने को भूल गया। माँ बेचारी केवल साज की आवाज सुनती रही। पतिया के हृदय में भी, पहली बार, कौतुक ने घर किया। कुछ देर उसने नाच देखा; फिर उसकी आँखें टिक गयीं पूरन पर—लट्ठे से टिका जो अपनी सुध-बुध भूल गया था।

रात को मेला देखकर पतिया जब लौटी तो बहुत देर तक उसे नींद नहीं आयी। पूरन और उसकी माँ बातें करते-करते सो गए। पर पतिया के जी को चैन नहीं पड़ रही थी। करवटें बदलते-बदलते, रात के तीसरे पहर, उसकी आँखें झपकीं। पर उसका मन अब भी जैसे मेले में ही भटक रहा था। सपने में वह देख रही थी—लट्ठे से टिका पूरन, गुड़िया की तरह सजी-सजाई पतुरियों का नाच, लोगों का पैसे फेंकना और उनका, खीसें निपोरते हुए, झुककर उन पैसों को उठाना, फिर सिंह-वाहिनी देवी—चारों ओर खून ही खून ! और माँ का उसमें उँगली भिगो कर...

एक चीख के साथ पतिया की आँखें खुल गयीं। आवाज सुनकर माँ ने पूछा :

"क्या है पतिया ?"

"कुछ नही माँ," पतिया ने कहा—"सपना देख रही थी।"

सोने का आदेश देकर माँ करवटें बदलने लगी। बोली कुछ नहीं। पतिया के हृदय में डर समा गया था। प्रयत्न करने पर भी वह उसे दूर नहीं कर सकी। अँधेरे मे धरती पर पड़े-पड़े वह ऊब चली—इससे तो यह कही अच्छा था कि रात-भर मेले में ही घूमती रहती। बडी बेचैनी से वह सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगी।

दूसरे दिन अँधेरे मुँह पतिया ने सबको जगा दिया। माँ बड़बड़ाती हुई उठ बैठी। पतिया ने कहा :

"मेला देखने के लिए यहाँ आई हो। चलो उठो, आज दिन-भर घूमेंगे।"

पतिया की बात सुनकर माँ को बडा अचरज हुआ। उसकी समझ मे न आया कि यह कैसी लड़की है। कहाँ तो मेले से दूर भागने को कहती थी, और कहाँ अब खुद ही उतावली हो रही है। माँ के हृदय में कुछ ढारस बँधा।

मेले में उस समय तक अधिक भीड़ नही हुई थी। तीनो निर्द्वन्द्व होकर दुकान-दुकान फिरने लगे। पूरन ने कुछ पहनने के कपड़े खरीदे। माँ ने चूड़ियाँ, सेंदुर, कंघी और कुछ चीजें खरीदी। पतिया से माँ ने कुछ खरीदने को कहा। उसने कहा :

"रहने दो, मुझे यह सब कुछ नही चाहिए!"

खिलौनों की दुकान के सामने पहुँचने पर माँ ने पतिया से फिर कहा :

"कुछ खिलौने ही खरीद ले। तू तो न जाने कैसी है ?"

"कोई अच्छा खिलौना मिले तब तो खरीदूँ। मुझे राम-सीता की जोड़ी अच्छी नहीं लगती जो उसे खरीद लूँ, और न वह मूँछें ऐंठे सिपाही ही जो बन्दूक कंधे पर रखे है। मैं यह नही खरीदती।"

दूकानदार आगे बढ़ कर बोला :

"तू इधर आ ! देख, क्या खरीदेगी ?"

पतिया जरा अन्दर बढ़कर खिलौनों को देखने और छाँटने लगी। इन खिलौनों के बीच एक गुजरिया मुँह खोले चरखा कात रही थी। दीन-दुनिया से बेखबर सूत कातने में लगी थी—मानो अपनी तकदीर का तार निकाल रही हो।

संकेत पा कर दूकानदार ने गुजरिया उठाकर पतिया को दे दी।

पतिया ने तिनक कर कहा :

"क्या एक ही खिलौना दोगे ? मैं दूसरा एक और खरीदूँगी। जरा देख लेने दो। बताती हूँ।"

इधर-उधर आँखें घुमाने के बाद एक खिलौने पर उसकी नजर टिक गयी। वह बोली :

"दूकानदार, वह दो।"

दूकानदार ने समझा कि सूत कातती औरत खरीदी है तो दूसरा झण्डा लिये वीर जवाहर खरीदने को कहती है। इसी से हाथ में झंडा संभाले मिट्टी का वीर जवाहर उठा कर देने लगा।

यह देख पतिया गुर्रा उठी :

"यह नहीं। मैं उसे कहती हूँ जो तिरछी टोपी सिर पर लगाए सिगरेट पी रहा है। बड़ा अच्छा लगता है वह। इसे जरूर खरीदूँगी।".

पतिया की पसन्द पर माँ मन-ही-मन कुढ़ रही थी। पूरन भी खीझ-सा उठा था। पर उसने कुछ कहा नहीं। चुपचाप दोनों खिलौनों के दाम उसने दे दिये और तीनों मेले की दूसरी तरफ बढ़े।

कई रोज बाद पतिया के मुँह पर कुछ खुशी दिखायी पड़ी थी। पूरन और उसकी माँ ने समझा कि चलो, मेला आना सकारथ हुआ। पतिया को भी मेले में अब और कुछ लेना नहीं रह गया था। उसने उकता कर कहा :

"माँ, अब चलोगी न? पूरन भैया, चलो, अब घर लौट चलें। शाम ही तो है। दो-तीन घण्टे में घर पहुँच जायेंगे।"

माँ ने कहा :

"पूरन, तू कुछ खा-पी ले, और पतिया तू भी। तब फिर लौट चलें। कोई और काम तो है नहीं। तेरे दादा राह देखते होंगे।"

तीनों जिस राह हो कर मेले आये थे, उसी से घर लौट गये। पूरन के सिर पर गठरी, माँ के सिर पर गठरी, और पतिया के दोनों हाथों में दो खिलौने थे।

७

मेले से घर पहुँच कर दूसरे ही दिन पतिया ने अपनी सहेलियों को अपने घर बुलाया। मँझली और बड़ी में से सिर्फ मँझली ही आयी। बड़ी अपने पति के यहाँ दो रोज पहले ही चली गई थी। पतिया से उसकी भेंट न हो सकी, इसका उसे रंज था, मँझली ने बताया।

दोपहर के वक्त घर की अँगनई में पतिया अपने खिलौनों को लेकर बैठी। मँझली खिलौनों को देख-देख कर खूब हँस रही थी।

"मुझे मेले मे बहुत बुरा लग रहा था। वहाँ कुछ अच्छा नहीं था। और तुम्हारी सिहवाहिनी देवी? ओसारे में खून ही खून!"

"तुझे न मेला अच्छा लगे, न ससुराल अच्छा लगे। न जाने कैसी है?" मँझली ने कहा।

अच्छा क्यों नहीं लगता। ले, इसे देख, यह सूत कातती औरत कितनी भली है। अपने काम में लगी रहती है। न दुनिया की फिकर, न किसी की। और जरा इसे तो देख, कैसा छैलचिकनिया खड़ा है। तुझे पसन्द है न?" पतिया ने पूछा।

"मुझे क्यों न पसन्द आयेगा। मेरे 'वह' ठीक ऐसे ही है जैसे ये खड़ा है!" ठिठोली से मँझली ने कहा और पतिया का मुँह देखने लगी।

बात कुछ भेद-भरी थी। सुनकर पतिया कुछ सोच मे पड गयी।

फिर बोली :—

"तेरे न सही, पर मेरे तो हैं। इसी से खरीद लाई हूँ कि तुझे भी दिखा दूँ। बड़े सुन्दर हैं न !"

"पर इसके साथ उस औरत का क्या मेल ? तूने भी बेमेल सौदा खरीदा ?" मँझलो ने कहा।

"मेल-बेमेल मैं नहीं जानती। एक ही दूकान से तो मैं इन्हें लाई हूँ। तू बड़ी सयानी निकली। जानती है, मैं इन दोनों का क्या करूँगी ? देख, इस औरत को तो उस आले में और इस मर्दुवे को चूल्हे के ऊपर वाले ताख पर रख दूँगी। इसके मुँह पर खूब धुआँ लगेगा। बड़ा छैल-चिकनिया बना है !"

"बड़ी नाराज है तू इससे। तेरा इसने क्या बिगाड़ा है ? बेचारा चुपचाप खड़ा अपनी मूँछें मरोड रहा है। अगर हाथ-पाँव हिलाता होता, इसमें कुछ जान होती तो तेरी चमड़ी उधेड़ कर रख देता, और तुझे गरम तवे पर बिठा कर मछली की तरह भूनता। समझी, बहुत बातें न किया कर !"

"बड़ा आया चमड़ी उधेड़ने वाला। अभी पटक दूँ तो चूर-चूर हो जाये !" पतिया ने कहा।

मँझली कुछ कहने जा रही थी कि पतिया के बाप ने तमाखू माँगी। पतिया चिलम भरने लगी गयी। उसके जाने के बाद माँ आ गयी। पतिया की माँ और मँझली में बातें होने लगी।

"माई, तुम सब मेले हो आयी। मुझे अपने साथ न लिवा ले गयी—क्यों ?"

"हाँ बिटिया, हम मेले हो आयीं। तू चली नहीं। मेला बड़ा अच्छा था।"

"पतिया तो कहती है, मेला बड़ा,खराब था।"

"अरे, वह तो निरी पागल है। उसकी भली चलाई। उसे दुनिया

में कुछ अच्छा भी लगता है।"

"पागल नहीं है, बातें तो ऐसी गढ़ती है, जैसे चालीस से कम का न हो !"

"उसकी खरीदारी नहीं देखी ! दूकानदार तक हँसता था। सारे मेले में इन्हीं दो खिलौनों को पसन्द करके उसने मोल लिया।"

"माई, मैं तो समझी थी कि पतिया ने इस मर्दुवे को तुम्हारे मन से खरीदा है, और औरत अपने मन से। तभी तो इसे पटक कर चूर-चूर कर देने को कहती थी।"

"मैं तो बाहर खड़ी रही। दूकान के भीतर तक नहीं गयी। उसी ने दोनों खरीदे है।"

"अच्छा...!"

इतने में पतिया भी आ गयी। माँ ने कहा :

"क्यों, तू इसे पटक देना चाहती है क्या ?"

"हाँ...नहीं।"

"माँ से डरती है, इसी से हाँ-नहीं दोनों कहती है।"

"मेरी बिटिया के कुछ अक्किल नहीं है। बड़ी सीधी है।" माँ ने कहा।

"नहीं माई, समझ तो इसमे बहुत है। सूत कातती औरत इसे बहुत पसंद है। सो उसे सम्हाल कर रखेगी आले में, और यह जो मर्दुवा है न, उसे चूल्हे के ऊपर, धुआँधानी में रखने को कहती है।"

"यही तो इसमें पागलपन है," माँ ने कहा, "दोनों खिलौनों को एक ताख पर सजा कर रखना चाहिये। लेकिन यह है कि..."

"मैं तो रख दूँगी। पर यह औरत वहाँ रहना चाहती है ?"

"तुझे क्या मालूम ? रख कर तो देख। यह वहाँ से टस-से-मस न होगी।"

"वह नही रहने कहती। कहती है, मुझे मेले भेज दो। मैं यहाँ न रहूँगी।"

"मैं बहरी तो हूँ नही। मुझे तो कुछ सुनाई नही देता। बिटिया, देखती है न पतिया की बातें।" मँझली की ओर मुँह करते हुए माँ ने कहा।

"यह देखो माँ, मैंने तो दोनों को एक जगह रख दिया था, लेकिन यह दौड़ कर मेरे पास चली आयी।"

"चली कहाँ आयी—तू ही तो इसे उठा लायी है!"

"क्या करती? मुझ से गिड़गिड़ाने लगी। मैं उठा लायी।"

"भाई, इससे पूछो तो भला कि वह बेचारा वहाँ अकेला क्या करेगा?" मँझली ने कहा।

"वह जब तक जी में आवेगा, वही रहेगा और जब मन न लगेगा, तब चम्पत हो जायगा।" पतिया ने जवाब दिया।

"और यह औरत क्या करेगी? क्या अकेले अपने करम को रोया करेगी?" माँ ने चिढ़ कर कहा।

"नही माँ, बैठे-बैठे खूब सूत काता करेगी और..."

पतिया की यह बात सुन कर मँझली हँस पड़ी। पतिया को यह बहुत बुरा लगा। फिर एकाएक छैलचिकनिया को मँझली के मुँह के आगे कर कहने लगी :

"ले, इसे तू अपने घर ले जा। तेरी हँसी की यह खूब कद्र करेगा!"

पतिया की बातें सुन माँ का हृदय धक-धक कर रहा था।

८

मोहिनी की माँ को कई दिनों से ज्वर आ रहा था। कुछ कमजोर हो कर पीली पड़ गयी थी। उसकी देख-रेख करने वाला घर में कोई नही था। मोहिनी थी, पर उसका होना न होना बराबर था। एक बात यह भी थी कि माँ खुद उसे अपनी चिन्ता में नही डालना चाहती। चारपाई पर पड़ी रहती और जैसे-तैसे उठ-बैठ कर पानी पी लेती। मोहिनी से कुछ नही कहती। घर में और कोई दूसरा प्राणी नही है। स्वामी और नरायन दोनों लड़के घर छोड़ कर न जाने कहाँ चले गये। सूने घर में मोहिनी की चमक-दमक, बकरियों और उनकी मींगनों के सिवा अब और कुछ नही रहा है।

केवल बुखार की तकलीफ मोहिनी की माँ को विचलित न करती, पर उसे तो हर तरह की तकलीफों ने चारों तरफ से घेर लिया है। घर में अब पानी नही आता। थोड़ा-बहुत खींच कर मोहिनी लाती भी है तो वह उसी के ऊपर चढ़ जाता है। माँ को पीने के लिए भी मुश्किल से मिलता है। आटा-दाल, तेल-नमक, लकड़ी—सब का जैसे अकाल पड़ गया है। बकरियों की भूख अलग घर में ऊधम मचाये रहती है। पत्तियाँ तोड़ कर लाने वाला कोई नही। बीमार पड़ने से पहले वह ही लग्घा से तोड़ लाती थी, पर जब से खाट पर पड़ी है, मोहिनी क़राम खाने को जरूर कुछ पत्ती तोड़ लाती है, वरना वह कुछ फिकर नहीं करती।

दिये में तेल तक नही पड़ता। घर मे अँधेरा रहता है। झाड़ू नही लगती। बरतन वैसे ही पडे रहते है। मोहिनी को जैसे अपने हाथों के घिस जाने का डर रहता है। दो-दो तीन-तीन बार जले हुए बरतन चूल्हे पर फिर-फिर कर चढ़ते रहते हैं।

घर की हालत देख कर मोहिनी की माँ कभी-कभी बहुत ज्यादा घबड़ा उठती है। न मालूम क्यों, वह मोहिनी से कुछ कहना-सुनना नही चाहती। शायद उसे डर लगता है कि अन्य सब ने तो छोड़ ही दिया है, कही यह भी घर छोड कर न निकल जाय।

रह-रह कर मोहिनी की माँ को अपनी बहू पतिया की याद आती। अक्सर सोचती कि किसी तरह उसे बुला ले। वह आ जायेगी तो घर बुहारेगी, पानी लायेगी, बरतन साफ रखेगी, खाना पकायेगी, बकरियों के लिए पत्तियाँ तोड़ लायेगी—और कुछ नही तो कम-से-कम घर में उजाला तो करेगी...!

पतिया की यह याद इस तरह पहली बार मोहिनी की माँ के हृदय मे उभरी थी। उसके भीतर का मन जैसे कहता था कि चाहे जो भी हो, पतिया आयेगी जरूर। पतिया ऐसी नही कि रूठ कर अपना घर ही छोड दे। जैसे एक दिन यहाँ से चुपचाप खिसक गई थी, वैसे ही अपने मायके से एक दिन आ भी जायेगी!

घर मे और कोई नही था। मोहिनी की माँ अकेली बिस्तरे पर लेटी थी। पतिया के बारे में सोचते-सोचते उसे कुछ ऐसा लगने लगा मानो पतिया सचमुच आने वाली हो। आँखें बन्द कर निरालस भाव से वह पड़ रही और पतिया के पाँवों की आहट सुनने की प्रतीक्षा करने लगी।

तीसरे पहर के वक्त मोहिनी अपने आँचल मे लाई के लड्डू ले कर घर आयी। आहट सुन कर माँ ने पूछा :

"कौन...?"

"कोई नही", मोहिनी ने ठिठक कर उत्तर दिया—"मैं हूँ, माँ !"

माँ ने कुछ नही कहा। आँखें बन्द किए ही करवट बदल कर दूसरी ओर मुँह कर लिया। मोहिनी कुछ क्षण चुपचाप ठिठकी खड़ी रही। फिर बोली :

"मैं तो अपने लिए कुछ नहीं बनाऊँगी, माँ ! तुम अगर कहो तो तुम्हारे लिये..."

मोहिनी की माँ ने कहा :

"मैं कुछ नही खाऊँगी। पर मेरे पीछे तू कब तक भूखी रहेगी। अपने लिए तू कुछ बना ले तो अच्छा हो।"

"अपने लिये मैं कुछ न बनाऊँगी। मुझे भूख नहीं है।" कहते हुए मोहिनी माँ की खाट के पास धम्म से बैठ गयी।

"माँ, आज तुम बहुत उदास दीख रही हो !" मोहिनी ने प्यार जताते हुए पूछा।

"नही तो बेटी !" इतना ही कह कर वह चुप हो गयी।

"मालूम होता है, तुम मुझसे नाराज हो। मैं तुम्हारा कुछ काम नही करती, दिन भर इधर-उधर घूमा करती हूँ, इसलिए।"

"तू नाहक ऐसा सोचती है। मैंने तो तुझे आज तक कुछ नही कहा।"

"माँ, क्या तुम्हें मेरा यह ढङ्ग बुरा नही लगता ? मैं घर में बहुत कम रहती हूँ और ज्यादातर बाहर ही......"

"लड़की है तू। मैं भी तेरी उमर में ऐसी ही थी, बल्कि तुझसे भी कही ज्यादा। इस उमर में सभी खूब खेलते-कूदते है। पर मैं सोचती हूँ......"

"हाँ माँ, सोचती तो मैं भी हूँ। पर यह उमर ही कुछ ऐसी है कि जितना सोचो उतना........"

मोहिनी की बात सुन कर माँ एकटक उसके चेहरे की ओर देखने

लगी। मोहिनी माँ की दृष्टि का सामना नहीं कर सकी। बात बदल कर उसने कहा :

"पानी पिओगी माँ। लाओ, मैं सिर दबा दूँ। दर्द कर रहा होगा।"

कुछ कहने से पूर्व ही मोहिनी ने माँ का सिर दबाना शुरू कर दिया। माँ ने कोई विरोध नहीं किया। चुपचाप उसी तरह पड़ी रही। फिर एकाएक मोहिनी के हाथ को अपने दोनों हाथ में ले कर कुछ क्षण देखती रही—मानो मोहिनी की भाग्यरेखा को परख रही हो !

"क्या देख रही हो, माँ ?" मोहिनी ने अपना हाथ माँ के हाथों से छुड़ाते हुए कहा।

माँ की आँखें मोहिनी के चेहरे पर पड़ीं, सारे शरीर पर पड़ीं और फिर चेहरे पर एकटक टिकी रह गयीं। शायद इस तरह आज तक माँ ने मोहिनी को न देखा था। यह पहला ही अवसर था जब मोहिनी के रूप पर माँ की आँखें इस तरह अटक कर रह गई थीं। बड़ी-बड़ी आँखें, नुकीली भौहें, गालों और ओठों की ताजगी, गरम-गरम साँस—देख कर मोहिनी की माँ का हृदय काँप उठा।

मोहिनी का हाथ माँ के हृदय पर रखा हुआ था। माँ का हृदय बुरी तरह धड़क रहा था। उसने पूछा :

"माँ, तुम्हें क्या हो गया है ? देखो न, तुम्हारा दिल कितनी जोर से धड़क रहा है—साँस भी जोर-जोर से चल रही है।"

"जरा इधर आ, बेटी !" माँ ने कहा और मोहिनी को अपनी दोनों बाँहों में कस कर हृदय से लगा लिया। माँ अपनी बाँहों में मोहिनी को इस तरह कस कर जकड़े थी—मानों माँ को डर था कि यदि जरा भी ढील रह गई तो मोहिनी भी हाथ से निकल जायगी।

मोहिनी घबरा उठी। माँ ने अपनी बाँहों में उसे इस तरह कस

रखा था कि उसका दम घुटने लगा। जैसे-तैसे अपने को छुड़ाते हुए मोहिनी ने कहा :

तुम्हें हो क्या गया है माँ जो..."

मोहिनी अपना वाक्य पूरा न कर सकी। आँसुओं से भरी माँ की आँखें देख कर वह चुप हो गयी और सिरहाने बैठ, चुपचाप, माँ के उलझे हुए बालों को अपनी उँगलियों से सुलझाने लगी।

# ६

मोहिनी शीशा सामने रखे कंघी से अपने बाल सँवार रही थी। कमर तक लम्बे, काले-काले, छल्लेदार बाल लहरा रहे थे। बिलकुल नागिन जैसे लगते थे। तिल्ली के तेल की चिकनाई बालों में धार पैदा कर रही थी। अभी उस दिन माँ के उलझे बालो में उँगलियाँ फेरते-फेरते वह अनायास ही चौक उठी थी। उसे ऐसा लगा था मानो किसी अंगारे पर उसका पाँव पड़ गया हो—या फिर कोई अनहोनी बात हो गई हो। तभी माँ ने उससे पूछा :

"क्या है, बेटी ?"

"कुछ नही माँ," कुछ क्षण रुक कर तथा एक झटके के साथ माँ के सफेद बाल को तोड़ते हुए मोहिनी ने कहा—"एक सफेद बाल था, माँ। मैंने तोड दिया !"

कमर तक लम्बे काले-काले बालों की एक लट को हाथ में लिए मोहिनी बड़े ध्यान से उसे देख रही थी। देखते-देखते वह खिल-खिला कर हँस पडी। फिर बोली :

"माँ तो पगली है। उसने अपने को कही का न रखा। लेकिन मैं...!"

मोहिनी ने शीशा अपने हाथ में उठा लिया। अपने रूप को देख कर वह स्वयं ही मुग्ध हो उठी। अपनी छवि को सम्बोधित कर वह कहने लगी :

"मैं सुन्दर हूँ। मुझे डर किसका है! मैं जो चाहूँ करूँ। मैं सिंगार न करूँ तो और कौन करेगा। अभी इन घने बालों को चिकना कर जूड़ा बाँधूँगी, माँग में सेंदूर भरूँगी, मुँह में तनिक चिकनाहट लगा कर आँखों में काजल की धार और माथे पर बिन्दी—अरे, फिर देखना!

"मैं अपने मुँह मियाँमिट्ठू नहीं बनती। मुझे कौन नहीं चाहता। जिसे देखो, मेरे लिए व्याकुल दिखता है। मैं जिस ओर निकल जाती हूँ, न-जाने कहाँ-कहाँ के छोकरे मेरे आसरे में ताकते मिलते हैं। आवारा कहीं के! मन्दिर में देवी को जल चढ़ाने जाती हूँ तो वहाँ भी पहुँच जाते हैं। दूकान पर सौदा लेने जाती हूँ तो दूकान वाले का लड़का ताक में रहता है। तालाब में नहाने जाती हूँ तो लोग वहीं पर मँड़राया करते हैं, कुएँ पर जाती हूँ तो चौपालों से लोग इशारा करते हैं!

मोहनी को बीते दिनों की याद हो आयी जब वह छोटी-सी थी। पिता पड़े-पड़े चारपाई तोड़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते थे। घर में कुछ हो, उन्हें कोई फिक्र नहीं थी। न उन्हें माँ की परवाह थी; न बेटे-बेटियों की। माँ जब अकेली होती थी तो बहुत खुश रहती थी। सदा कोई न कोई गीत गुनगुनाती रहती थी। किंतु अपने बच्चों को देखते ही वह सब कुछ भूल जाती थी। उनकी खुशी न जाने कहाँ गायब हो जाती थी, और जरा-जरा सी बात पर नाराज हो जाती थी।

मोहनी और स्वामी को उन दिनों वह पीटती भी खूब थी। एक दिन की बात है। माँ कंघी-चोटी कर रही थीं। सिंगार करते समय वह किसी को अपने पास नहीं फटकने देती थी। उन्हें अपने पास तक नहीं आने देती थी। दोनों दूर खड़े देखा करते और यह मनाया करते कि माँ जल्दी से सिंगार कर घर से बाहर निकल जाय। माँ के बाहर चले जाने पर दोनों उसके कपड़ों तथा सिंगार की सामग्री के साथ-साथ मनमानी किया करते।

उस दिन माँ ने दोनों को पकड़ लिया और बुरी तरह मारा। माँ जल्दी ही घर लौट आयी थी। मोहिनी उस समय स्वामी का सिंगार कर रही थी। उसे माँ की उसने साड़ी पहना दी थी, उसके माथे पर बिंदी लगा दी थी। माँ ने देखा तो आगबबूला हो गयी। उन्हें खूब मारा। रोते-रोते दोनों गये अपने पिता के पास। रोते जाते थे और कहते जाते थे :

"इस माँ को तुम घर से निकाल दो। दूसरी माँ ले आओ। इसके साथ हम नहीं रहेंगे!"

पिता ने कुछ नहीं कहा। गोदी में बिठा कर उन्हें पुचकारा तक नहीं। बस, हो-हो-हो करके हँसने लगे। फिर बोले :

"माँ को निकाल दो, खैर इसको मनाओ कि वह हमें घर से बाहर नहीं निकाल देती...जाओ चले जाओ यहाँ से!"

इसके बाद वह फिर हो-हो-हो कर हँसने लगे।

मोहिनी और स्वामी दोनों पिता के पास से चले आये। उन्हें अब विश्वास हो गया था कि पिता उनके लिए कुछ न करेंगे। माँ उन्हें पीटती थी और वे पिट कर रह जाते थे। न माँ उन्हें पीटना बन्द करती थी, और न वे ही अपना रवैया बदलते थे। हाँ, एक बात अवश्य हुई थी। वह यह कि अब मोहिनी स्वामी का सिंगार नहीं करती थी। स्वामी को अब वह बाहर खड़ा कर देती थी, और स्वयं अपना सिंगार करती थी। स्वामी का काम यह होता था कि वह देखता रहे, कोई आ तो नहीं रहा है!

स्वामी को यह अच्छा नहीं लगता था कि मोहिनी सिर्फ अपना ही बनाव-सिंगार करती रहे। दूर खड़ा-खड़ा वह मोहिनी पर झुंझलाया करता। कभी-कभी तो उसके मन में होता कि मोहिनी का सारा सिंगार नोच डाले। यह भावना उसमें दिन-दिन जोर पकड़ने लगी। जब नहीं रहा जाता तो मोहिनी पर झपट पड़ता। एक दिन तो वह इस बुरी तरह झपटा कि मोहिनी नंगी खड़ी रह गयी। मोहिनी सकपका उठी,

पर स्वामी पर इसका कोई असर न पड़ा। वह दूर खड़ा हँसता रहा—ठीक अपने पिता की तरह—हो-हो-हो !

स्वामी और मोहिनी का विरोध दिन-दिन बढ़ने लगा। मोहिनी उसका सिंगार करना चाहती तो भी वह उसकी बात नहीं मानता था। उल्टी आदत उसे पड़ती जा रही थी। छिप कर वह देखता रहता कि मोहिनी सिंगार कर रही है। जब सिंगार कर चुकती तो झपट पड़ता। मोहिनी का सिंगार उसे फूटी आँखों नहीं सुहाता। यह भावना इतने प्रबल रूप में उसके हृदय में घर कर गयी थी कि एक मोहिनी ही नहीं, कपड़ों से लदी-फँदी उसे कोई भी स्त्री नहीं सुहाती थी। जब कभी वह किसी स्त्री को देखता तो यही उसके मन में होता कि उसके कपड़ों को नोच कर फाड़ डाले, और उसे नंगा-बूचा कर कहीं दूर जंगल में छोड़ आये।

मोहिनी को अच्छी तरह याद था। माँ ने जबरदस्ती स्वामी का ब्याह कर दिया था। पतिया को ले कर जब वह घर आया, तो उसके साथ भी उसने ऐसा ही किया। बहका-फुसला कर स्वयं मोहिनी ने पतिया को अपने साथ ले जा कर स्वामी के कोठे में बन्द कर दिया। मोहिनी चुपचाप दराज में से देखती रही। कोई बात न चीत, स्वामी पतिया पर गीध की तरह झपटा और उसके कपड़े नोच डाले। स्वयं मोहिनी चीख मारते-मारते रह गयी। उस दृश्य को न देख सकने के कारण उसने अपनी आँखें बन्द कर ली। पतिया के तो जैसे होश ही गायब हो गये। उस दिन जो पतिया के हृदय में स्वामी के प्रति घृणा उपजी सो फिर कभी न मिटी। मोहिनी से भी कई दिन तक पतिया नहीं बोली। उसे सन्देह था कि अपने भाई स्वामी से मिल कर ही मोहिनी ने उसकी यह गत करवाई है। इन दोनों में मिली-भगत है।

"मिली-भगत !" मोहिनी ने खड़े होते हुए कहा, "अच्छा हुआ जो स्वामी यहाँ से चला गया। हमें भी देखना है, कौन तीसमारखाँ बन कर

वह अब घर लौटता है।"

मोहिनी का सिंगार पूरा हो गया था। एक बार फिर शीशे में उसने अपना मुंह देखा और गर्व से भर उठी। इसके बाद अपनी धोती और चोली ठीक कर माँ के पास पहुँची :

"जरा बाहर जाती हूँ। आ जाऊँगी साँझ तक।"

घर से निकल कर मोहिनी थोड़ी दूर ही गई होगी कि एक बाम्हन के छोटे बच्चे को जबरदस्ती पकड़ कर उसके घर ले गयी और दरवाजे से अन्दर घुसते हुए कहने लगी :

"अरे, यह जमना बड़ा बदमाश है। राह चलते ढेला मारता है। यह तो समझो कि धोती में लगा। जरा-सा और ऊपर करके मारा होता तो कमर में या पीठ में चिपक रहता !"

वह इतना कह पाई थी कि एक बीस-इक्कीस साल का खूबसूरत नौजवान उसके सामने आकर खडा हो गया। उसने जमना को पकड लिया। मोहिनी को सुनाते हुए उसने कहा :

"क्यों रे बेवकूफ, इस तरह कोई ढेला मारता है। अब ऐसा न करना। इसे तो फूल की मार की आदत है। क्यों, कहीं चोट तो नहीं लगी ?"

मोहिनी जल्दी से वहाँ से निकल कर दूसरी ओर बढ़ गयी। रास्ते में एक घर में अपनी बकरी ढूंढने के बहाने घुस गयी। इत्तिफाक से उस समय घर में कोई औरत न थी। क्षत्री युवक आँगन में खाट पर पडा धूप खा रहा था।

"यहाँ मेरी बकरी आयी है ?" मोहिनी ने कहा और आँगन में पहुँच गयी।

युवक ने हाथ पकड़ कर कहा :

"हाँ आयी है। उसे कोठे मे मैंने बन्द कर रखा है। मेरा अनाज खा गयी थी। अपनी बकरी को तुम बाँध कर नहीं रखती !"

"तो क्या मुझे भी बकरी के साथ-साथ बाँध कर रखने का इरादा है। मेरा हाथ छोड़ दो। मैं बकरी नहीं हूँ—मैं हूँ मोहिनी!" ऊपरी गुस्से से मोहिनी बोली।

"पहले यह तो बताओ कि तुम मेरे घर में बिना पूछे घुस कैसे आयी? तुम्हें भी बकरी की तरह कोठे में......"

"बड़े आये बकरी की तरह बाँधने वाले! हाथों में दम भी है!" मोहिनी ने कहा और एक झटके के साथ अपना हाथ छुड़ा कर घर से बाहर हो गयी।

वह युवक देखता ही रह गया।

१०

लखनपुर के मेले को हुए छः महीने बीत गये। पतिया अब भी अपने मायके मे बनी है। ससुराल से अभी तक कोई बुलावा नहीं आया। स्वयं पतिया को इसकी कोई परवाह् नही थी। वह तो वहाँ से भाग ही आयी थी। अगर उसका मन वहाँ लगता तो वही बनी रहती। पर, उसकी माँ को अवश्य कुछ-कुछ चिन्ता सताने लगी थी। अकसर उसके मन में तरह-तरह की शंकाएँ आती और उसे घबड़ा कर विलीन हो जाती।

पतिया का हृदय समझ कर भी माँ उसे कभी न समझ पायी। पतिया ने जब जन्म लिया था तो वह बिलकुल ऐसी थी मानो चुहिया। गोदी में उठाते समय भी डर लगता था कि कहीं इसके प्राण न निकल जायें। किसी को इसकी आशा नही थी कि वह जियेगी। माँ उसे जब देखती थी तो उसका हृदय ठक्-ठक् करके रह जाता था। एक खटका-सा माँ के हृदय में बैठ गया था जो हर समय उसे इस बात की याद दिलाता रहता था कि पतिया जियेगी नही। ठण्डी साँस छोड़ते हुए वह सोचती : "इससे तो यह कही अच्छा होता कि पतिया जन्म ही न लेती !"

पर पतिया मरी नही। माँ उसके जीवट को देख कर दंग रह गयी। कहाँ तो माँ रोज पतिया के मरने की बाट देखती थी-और कहाँ अब उन्हे कुछ ऐसा विश्वास हो चला कि चाहे जो हो, पतिया कभी मरेगी नही। पतिया पर अब जब कभी वह गुस्सा होती तो झुँझलाकर कहती,

"अच्छा होता, अगर यह पहले ही मर जाती...पर यह काहे को मरने लगी...यह तो हम सबको मार कर मरेगी... !"

गुस्सा उतर जाने पर उतने ही वेग से वह पतिया को प्यार भी करती, पतिया मरेगी नहीं—राम न करे वह कभी मरे—किन्तु एक बात उसमें अब भी बाकी थी। उसने जब जन्म लिया था तो बिलकुल ऐसे लगती थी मानो चुहिया हो। पतिया का वह चुहियापन अभी तक बना हुआ था। उमर उसकी सयानी हो चली थी, पर बदन की गठन छुटपन जाहिर करती थी। रह-रहकर माँ सोचती :

"लड़की की जात। ब्याह होगा तो भला क्या कहेगा इसका पति चुहिया-सी बहू को देखकर !"

*माँ की कुछ समझ में नहीं आता था कि पतिया कैसी लड़की है जो* उमर इसकी बढ़ती जाती है, मगर बदन इसका फिर भी नहीं पनपता। खुद भूखी रह कर भी वह पतिया के खाने-पहनने की जुगत लगाती। पतिया को अपने पास बुला कर उसके शरीर पर हाथ फेर-फेर कर इस बात की टोह लेने का प्रयत्न करती कि कहीं कोई उतर-चढ़ाव दिखाई पड़े।

माँ पतिया को खूब भरा-पूरा देखना चाहती थी।

पतिया को यह सब जरा भी अच्छा नहीं लगता। माँ उसमें जितना अधिक उभार देखना चाहती, उतना ही पतिया माँ के सामने पहुँचने पर सिकुड़ जाती। उसका बस चलता तो वह अपने रहे-सहे अधकचरे शरीर को भी लोप कर देती। माँ की दृष्टि से छिपा कर वह अपने शरीर को रखना चाहती। खाने-पहनने की ओर से भी पतिया की रुचि उचट गयी। वह तो बस मशीन की तरह सदा काम में जुटी रहती।

एक दिन की बात है। अलग खड़ी माँ बहुत देर तक पतिया को देखती रहती। जब नहीं रहा गया तो बोली :

"तू भले ही खत्म हो जाये पतिया, पर तेरा काम कभी नहीं खत्म होगा। मैं कहती हूँ, अपने तन का भी कुछ ध्यान रखा कर....!"

पतिया सब कुछ करती, पर अपने तन का ध्यान नहीं रखती। उसे बड़ा बुरा लगता जब कोई तन की ओर ध्यान देने की बात उससे कहता या उसके तन की ओर ध्यान देना शुरू करता।

"तुम भी अजीब बात करती हो, माँ!" पतिया अपनी झुंझलाहट को दबाने का प्रयत्न करते हुए कहती—"काम भी न करूँगी तो फिर और क्या होगा इस मुये तन का!"

इसी तरह दिन बीतते गये। अन्त में कांपते हृदय से माँ ने पतिया का विवाह किया और इसके बाद अपने ससुराल से भाग कर जब पतिया आयी तो कांपते हृदय से उसका स्वागत किया। अपने मन को समझाने के लिए माँ ने सोचा कि पतिया वैसे ही चली आई है। कुछ-आध महीने रह कर लौट जायगी। किन्तु छः महीने बीतने के बाद भी जब पतिया न तो स्वयं गयी और न उसे कोई लिवाने आया तो माँ का हृदय आशंकाओं से घिरने लगा। सब कुछ समझ कर भी माँ कुछ नहीं समझ पाती। इसके अलावा पतिया की अंतर्मुखी बातें भी माँ को अचरज में डाले रहतीं, उसका मौन में [illegible] का [illegible], [illegible] में [illegible] का [illegible], फिर उसे [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] से रह-रह कर माँ का हृदय कांप उठता!

## ११

पतिया अपने काम में जुटी थी। पास ही बैठी माँ पतिया के बारे मे तरह-तरह की बात सोच रही थी। तभी पूरन ने आ कर कहा :

"माँ, आज खेत ताकने तुम दोनों चली जाना। मैं न जाऊँगा।"

माँ बोली :

"बड़ी अच्छी बात है। हम चली जायेंगी। तू रात को घर पर ही सोना। बुढऊ भी तो यही रहेंगे।"

पतिया बोली :

"क्या कही नौटंकी है, भैया ?"

पूरन ने जवाब दिया :

"नहीं तो। यों ही तबीअत नही करती। क्यों, तुझे वहाँ जाते डर लगता है क्या ?"

"डर मैं किसी से नही करती। घर हो चाहे खेत-खलिहान— कही भी मुझे डर नही लगता। मैं खूब मजे से मचान पर चढ़ कर खर्राटे मार कर सोऊँगी। मुझे जैसे यहाँ, तैसे वहाँ।" पतिया ने निडर हो कर लापरवाही से कहा।

माँ ने कहा :

"पतिया, थोड़ी देर बाद चलूँगी। तब तक सब को खिला-पिला दूँ। सूरज डूबने से पहले ही खेत पहुँच जायेंगे। नही तो रात को

अँधेरे में रास्ता न सूझेगा।"

पूरन बोला :

"अभी हम लोग न खायेंगे। तुम खा-पी लो। मैं दादा को खिला दूँगा और खुद भी खा लूँगा। डिब्बी में तेल तो है न ?"

पतिया दौड़ कर आले तक गयी और डिब्बी को उठा कर बोली—

"हाँ, है तो। आज भर चल जायगा।"

× × ×

गाँव से एक मील के फासले पर कई खेत हैं। वहीं पर सात-आठ बीघे का खेत पूरन का है। रात का समय है। अँधियारी हर तरफ घेरा डाले पड़ी है। कोई बोल नहीं सुनाई पड़ता। सब ओर सूनसान सायें-सायें करता है। अपने-अपने खेतों पर किसान लोग सोये हैं। गहरी नींद का पहर है। कोई जागता नहीं जान पड़ता। आसमान के सितारे धरती पर उतर कर सबको जगा देना चाहते हैं। इसी से कुछ उत्सुक से दिखते हैं। आदमियों की रात उनका दिन है। खेतों में खड़ी ज्वार भी सन्नाटा खींचे है!

करीब आधी रात बीत गयी। एकाएक सड़क के पास, पीपल से, उल्लू के बोलने की आवाज चारों तरफ दौड़ गयी। एक मरतबा नहीं, बल्कि बड़ी देर तक, रह-रह कर, वह पचीसों बार बोलता रहा।

खेतों मे जैसे कँपकँपी दौड़ गयी। हवा घबड़ा कर इधर-से-इधर लुकने-छिपने लगी। रात की शान्ति भंग हो गयी। ऐसा मालूम होने लगा जैसे कोई हत्यारा खून में डुबोई छुरी लिये खेतों के आस-पास डोल रहा हो। आसमान भी जैसे डर गया और वह धरती को छोड़ कर ऊपर उठने की कोशिश करने लगा। तारे बड़ी गौर से, एकटक आँख गड़ा कर, क्या होने जा रहा है, देखने लगे।

पतिया घबड़ा कर जग उठी। उल्लू की बोली सुन कर उसके रोएँ खड़े हो गये। बोल रुक-सा गया। आँखें खुल कर इधर-उधर देखना

चाहती थीं, पर खुलती न थी। मन में डर फैल गया। उल्लू की बोली गया, जैसे मौत आ कर मँडरा रही थी। पतिया ने सोचा—माँ को जगा दे। उसने जल्दी से माँ को हिला दिया। वह न जगी। पतिया की घबराहट और बढ़ गयी। तबियत हुई, एक गोफना घुमा कर मचान से उल्लू को मार कर भगा दे, पर उसे याद हो आया कि उल्लू ढेला लोक कर किसी कुएँ में डाल देगा। फिर जैसे-जैसे ढेला घुलेगा, वह भी घुल-घुल कर मर जायेगी। यह सोच कर वह अधिक चिन्तित हो गयी। उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। अँधेरी रात में उल्लू की बोली उसे शैतान की तरह तंग कर रही थी। वह कभी इधर करवट बदलती तो कभी उधर, पर चैन नहीं मिलता था। वह जोर से आँख गड़ा कर सोने का बहाना करती, और दो-तीन मिनट मुरदा-सी पड़ी भी रहती, पर जैसे कोई सोने नहीं देता। ऐसा मालूम होता कि जैसे उल्लू ठीक मचान के नीचे ही आ कर बोल रहा है। उसने कानों में उँगलियाँ डाल लीं कि बोल न सुनायी दे, लेकिन बोल फिर भी सुनायी देता रहा। जैसे-जैसे देर होती गयी, पतिया को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो हर एक बोल के साथ सैकड़ों उल्लू पैदा हो रहे हैं और चारों ओर उड़-उड़ कर बोल रहे हैं। वह बेहद सहम गयी। आज तक वह कभी इतनी न डरी थी।

अन्त में पतिया ने माँ को दोनों हाथों से पकड़ कर झकझोर दिया। माँ जग उठी। बोली :

"क्या है, बेटी।"

पतिया ने माँ के मुँह पर अपना हाथ रख दिया और बिलकुल चिपट कर एक हो गयी। उसका दिल बड़े जोर से धड़क रहा था। वह चुप्पी खींचे माँ से लिपटी पड़ी रही।

माँ ने सुना, उल्लू बोल रहा है। समझ गई कि पतिया इसकी बोली सुन कर डर गई है। प्यार से पतिया की पीठ पर हाथ फेर कर

वह उसे थपकी देने लगी।

जरा देर के लिए उल्लू का बोलना बन्द हुआ। पतिया की जान में जान आयी। माँ से बोली :

"पूरन भैया भी बड़े खराब है। मुझे बता देते तो मै यहाँ न आती।"

"हाँ," माँ ने कहा।

"माँ, मैंने तुम्हें एक बार पहले भी जगाया था। तुम न जागी तो मेरी जान सूख गयी। बोलना बन्द ही न होता था। मै मरी जा रही थी। न जाने क्यो, मुझे सुन-सुन कर बहुत डर मालूम होता था।"

"उल्लू की बोली ऐसी ही होती है। मुझे डर लगता है, तब तेरी कौन कहे। तू तो अभी बच्ची ही है।"

"बड़ी अशुभ होती है न, माँ ?" पतिया ने पूछा।

"बहुत," माँ ने कहा—"जरूर कोई-न-कोई बुरी बात हो कर रहती है। मेरा दिल भी सहम गया है। ईश्वर भला करे !"

"मालूम होता है, कल भी उल्लू बोला था। तभी पूरन आज यहाँ नही सोया, और हम लोगों को उसने भेज दिया।"

"ऐसा होता तो वह जरूर बता देता।"

इतने मे उल्लू ने फिर बोलना शुरू कर दिया। पतिया को अनुभव हुआ—मानो रात के अँधेरे में से असंख्य भयानक-भयानक जीव प्रकट होने और आस-पास शिकार की तलाश में दौड़ने लगे हैं। क्षण-भर में उसके पास आ कर उसे दबोचने लगे। फिर पतिया को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई मचान उखाड़ कर फेंक देना चाहता है। वह और भी डरी। जोर से माँ के सीने के पास चिपक गयी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सारे शरीर में कोई दाँत गड़ा कर उसका मांस नोचे लिये जाता है।

जब तक उल्लू बोलता रहा, पतिया की ऐसी ही दशा रही। उसकी

नींद हर गयी। कब सवेरा हो, वह इसी का इन्तजार करती रही। माँ को ऊपर से तो अधिक चिन्ता नहीं दिखती थी, पर भीतर वह भी पतिया से कहीं ज्यादा डर गई थी। उल्लू की बोली के बारे में तरह-तरह की बातें वह सुन चुकी थी। वे सब बातें उसे एक-एक कर याद आने लगी। सवेरा होने पर जब मचान से नीचे उतरी और पतिया के साथ घर जाने लगी तो उसे मालूम हुआ जैसे उसकी जान निकल गई है और केवल ठठरी बाकी रह गई है। उसके बोलने की शक्ति भी खो-सी गई थी। एक भी शब्द वह पतिया से नहीं बोली।

पतिया की समझ में भी नहीं आया कि आखिर माँ बोलती क्यों नहीं। सूरज की किरनों के स्पर्श से पतिया का डर भाग गया था और वह फिर जैसी की तैसी हो गई थी। लेकिन माँ घर पहुँच कर खाट पर लेट गयी और फिर किसी से नहीं बोली। पूरन आया। उसने हाल पूछा। वह कुछ न बोली। उसका पति आया। उससे भी कुछ न बोली। पतिया ने पास बैठ कर सिर मीजा और पानी को पूछने लगी। पर माँ ने न तो पानी माँगा, न खाना। सारा दिन उसी तरह पड़ी रही।

दूसरी रात माँ ने पतिया को अपने पास इशारे से बुलाया। पतिया आगे को खिसक आयी। माँ एकटक डबडबाई आँखों से उसकी ओर देखती रही। पतिया से माँ की आँखों की ओर देखा न गया। उसे रुलाई आने लगी, पर रोई नहीं। भीतर-ही-भीतर अपने आँसुओं को पीने लगी।

इसी समय माँ का अस्फुट स्वर पतिया को सुनाई पड़ा। माँ ने कहा :

"मैं तो डर गई थी बेटी कि कहीं तेरे स्वामी को न कुछ..."

माँ का स्वर जैसे फिर खो चला। पतिया ने माँ को ढारस बँधाते हुए कहा :

"कुछ नहीं माँ, तुम उनकी चिन्ता न करो। मैं जानती हूँ, उन्हें कुछ न होगा।"

कुछ देर बाद माँ का स्वर फिर लौट आया। माँ ने क्षीण आवाज में कहा :

"अब ठीक है। यह अच्छा हुआ जो बला मेरे अकेले सिर गयी। मरने से पहले मुझे वचन दे बेटी कि तू अपने घर चली जायगी, और अपने पति से..."

माँ का यह अधूरा वाक्य फिर पूरा न हुआ। तीन दिन बाद, ठीक उसी समय, जिस समय कि खेत में उल्लू बोला था। माँ की जान निकल गयी।

# १२

माँ के अन्तिम वचनों की गाँठ बाँध कर पतिया अपने पति के घर लौट आयी। उसने निश्चय कर लिया था कि सब ओर से ध्यान हटा कर अपने पति की वह सेवा करेगी। कमासिन पहुँच कर सबसे पहला काम जो वह करना चाहती थी, वह यही कि स्वामी के पैरों पर पड़ कर वह माफी माँगेगी। एक बार यदि वह ठुकरा देंगे तो भी वह उनके पाँव नहीं छोड़ेगी। किन्तु पतिया को बड़ी निराशा हुई जब उसने देखा कि स्वामी घर पर नहीं हैं। माँ और बहिन—सबको छोड़ कर वह कहीं चले गये हैं

पतिया मन-ही-मन खीज उठी। पर उसने अपनी खीज को प्रकट नहीं होने दिया। कुछ दिन तक तो छाती पर पत्थर रख वह काम में अपने मन को लगाये रही। किन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गये, अपनी खीज को दबाये रखने में वह असमर्थ होती गयी। सबसे अधिक गुस्सा आता था उसे अपनी माँ पर। काम करते-करते झुंझलाकर वह कहती :

"मरते-मरते मर गयी, पर माँ को समझ न आयी। अन्त समय तक यही कहती रही कि अपने ससुराल की दीवारों से जा कर सिर टकरा। इसीलिए तू ने जन्म लिया है!"

स्वामी के प्रति पतिया के हृदय में जो घृणा थी, उसका अधिकांश मृत माँ पर झुंझलाहट उतारने में खर्च होने लगा। एक दिन बैठी-बैठी

अपने बीते जीवन के बारे में वह सोचने लगी। उसे ठीक-ठीक याद नही पड़ता कि उसका ब्याह कब हुआ था। हाँ, अपने गौने की उसे अच्छी तरह याद थी। पहली रात उसने अपने पति को जिस रूप में देखा था, उसे एक घड़ी के लिए भी वह नही भूल पाती थी।

पर यह तो बहुत बाद की बात है। मायका छोड़ते समय पतिया को बहुत दुःख हुआ था। उसे अच्छी तरह याद था कि माँ की छाती से लग कर कितनी देर तक फूट-फूट कर वह रोती रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। लेकिन भीतर-ही-भीतर पतिया खुश भी थी। जिस तरह माँ ने दिन-रात पतिया के अङ्ग-अङ्ग की टोह लेना शुरू कर दिया, उससे पतिया घबरा उठती थी। जी मे होता था कि भाग कर किसी ऐसी जगह वह पहुँच जाय, जहाँ माँ उसका पता तक न पा सके।

माँ की इस देखभाल से पतिया उकता गई थी। उसकी कुछ समझ में नही आता था कि वह क्या करे। कैसे अपनी माँ की नजरो से अपना पीछा छुड़ाये। बात बहुत आगे बढ़ गई थी। कभी-कभी तो पतिया सपने मे यहाँ तक देखती कि न-न करते भी माँ ने उसके बदन का कपड़ा हटा दिया है और उसके अङ्ग-अङ्ग को टटोल कर देख रही है। बहुत कोशिश करने पर भी पतिया के मुँह से आवाज नहीं निकल पाती थी। बेवसी की हद थी। आखिर जब नहीं रहा जाता तो पतिया के मुँह से चीख निकल पड़ती :

"यह क्या कर रही हो माँ...?"

"क्या है, बेटी ?" माँ पतिया की चीख सुन कर पूछती। पतिया कुछ न बोलती। चुप साधे पड़ी रहती। उसे डर लगता कि कहीं माँ सचमुच में उसके पास न चली आये। पड़े-पड़े वह अपने कपड़ों को समेटने लगती और गठरी-सी बन कर पड़ जाती। इसके बाद सावधानी से टटोल-टटोल कर देखती और यदि कपड़ों का कोई ओर-छोर य

सिरा इधर-उधर निकला मिलता तो उसे भी समेट कर बदन से सटा लेती।

पतिया का यह डर यहां तक बढ़ गया था कि वह स्वयं भी अपने शरीर की ओर नहीं देख पाती थी। इतनी बड़ी वह हो गई थी, पर कभी अपने शरीर की ओर देखने का उसे साहस नहीं होता था। नहाने-धोने मे यदि उसका कोई अङ्ग उघरा दिखाई पड़ जाता तो वह चट से आँखें वन्द कर लेती। सबसे अधिक उलझन होती उस समय जब उसकी माँ, विरोध करने पर भी, उसके उबटन लगाती, तेल मलती और रोज आँखें गड़ा कर देखती कि उसका बदन कुछ हरा होने लगा है या नहीं !

पतिया को यह बहुत बुरा लगता। गौना होने पर जब वह मायके से बिदा हुई तो उसने संतोष की साँस ली कि अब वह निर्विघ्न जीवन बिता सकेगी। इसीलिए एक ओर जहां वह अपनी माँ की छाती से लग कर आँसू बहा रही थी, वहां दूसरी ओर मन-ही-मन उसे खुशी भी हो रही थी।

इसके बाद ही आई यह रात, पहली बार जब पतिया को अपने स्वामी का सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। पतिया सन्न रह गई, और तब उसने अनुभव किया कि उसकी माँ किस कंडे की बनी हुई थी। पतिया को ऐसा लगा कि उसकी माँ की आत्मा ही स्वामी के शरीर में प्रवेश कर उसे नंगा नाच नचाने पर उतर आई हो। इसीलिए माँ ने उसका विवाह किया था।

पतिया की दशा विचित्र थी। रह-रह कर पतिया सोचती कि स्वामी उसकी माँ का ही रूप है और उसे फँसाने के लिए ही माँ ने उसके साथ उसका विवाह किया है। जितना ही पतिया सोचती, उतना ही अपने स्वामी से उसका मन विमुख होता जाता, और अन्त में माँ को लक्ष्य मे रख वह अपने मन की जलन उतारती। कभी-कभी तो वह

यहाँ तक बेचैन हो उठती कि इसी दम जा कर अपनी माँ से कहे :

"माँ, तुमने मेरा ब्याह क्या किया है; मेरी जान साँसत में फँसा दी है। मेरी जगह यदि तुम्हारा उसके साथ ब्याह हुआ होता तो ?"

पतिया का सारा बदन जलने लगता। ओंठ फड़कने लगते और उसके हाथों की मुट्ठियाँ बँध जाती। आखिर वह दिन आता जब वह अपने पति के घर से भाग निकली और अपनी माँ के घर पहुँची। मुश्किल से छः-सात महीने रह पाई होगी कि माँ की मृत्यु हो गयी और अन्त समय में भी माँ यही कहती गयी :

"बेटी ससुराल को ही अपना घर समझ कर रहना !"

## १३

ससुराल में पतिया की पहले किसी से पटरी नहीं बैठती थी—न मोहिनी से, न मोहिनी की माँ से। किन्तु इस बार, माँ की मृत्यु होने के बाद, जब वह कमासिन आयी तो मोहिनी की माँ और मोहिनी ने उसे अपनाने मे कोई कसर न छोडी। अनेक कारणों में से एक प्रमुख कारण इसका यह था कि तीनों एक ही दुःख से दुखी थीं। वह यह कि तीनो मे से किसी एक को भी ऐसा मरद-मानुस नही मिला था, जिसे देख कर वे संतोष की साँस ले सकें।

मोहिनी अब पतिया को हर समय घेरे रहती थी। पतिया की वे सब बातें मोहिनी को अच्छी लगती थीं जो कि पतिया की माँ के हृदय में खटकती रहती थी। पतिया के गले में बाँहें डाल कर मोहिनी कहती :

"सच मानो भौजी, परमात्मा ने अपने हाथ से तुम्हारे शरीर को गढ़ा है!"

पहले पतिया मोहिनी की बातें सुन कर चौंक उठती थी। मोहिनी जब उसके गले में बाँहें डालने आती थी तो वह पीछे हट जाती थी और जहाँ तक उससे बनता था, मोहिनी को अपने से दूर रखने का प्रयत्न करती थी। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसे चिढ़ाने और उसकी हँसी

उड़ाने के लिए मोहिनी इस तरह की बातें करती है। किन्तु आगे चल कर, धीरे-धीरे, पतिया का विरोध कम होता गया और उसे भी कुछ-कुछ विश्वास होने लगा कि सचमुच, उसे गढ़ने में विधाता ने सचमुच अतिरिक्त कौशल का परिचय दिया है।

एक दिन की बात है। मोहिनी पतिया को घसीटती हुई अपनी माँ के पास ले गई और बोली :

"देखती हो माँ, पतिया कितनी अच्छी है। ऐसा मालूम होता है कि परमात्मा ने इसे लड़का बनाते-बनाते लकड़ी बना दिया है!"

मोहिनी की बात सुन कर पहले तो माँ खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर कुछ सँभल कर बोली :

"ठीक कहती है तू। लड़का बनाते-बनाते परमात्मा ने पतिया को लड़की बना दिया है।"

कुछ देर रुक कर माँ ने फिर कहा :

"और भाग्य तो देख, इसके पति को परमात्मा ने मानो लड़की बनाते-बनाते लड़का बना दिया है।"

"हाँ माँ", मोहिनी ने माँ की बात सुन कर कहा, "स्वामी ठीक ऐसा ही है, जैसा तुम कहती हो। तुम्हारी साड़ियाँ पहनने के लिए वह बुरी तरह मचला करता था। जब मैं नहीं पहनाती थी तो मेरे कपड़े तक फाड़ डालता था। उसका बस चलता तो वह हमें नंगा ही रखता और खुद साड़ियाँ पहने घूमा करता!"

"मैं तो पहले ही जानती थी", माँ ने कहा, "जैसे बाप, वैसा बेटा। लड़की के रूप में ही पैदा हुआ तो किसी का घर बसा कर बैठता…!"

एकाएक मोहिनी की माँ को अपने पति की याद हो आयी। अपने पति को वह कभी आदर की दृष्टि से नहीं देख सकी थी। भीतर ही भीतर उसके हृदय मे अपने पति के प्रति असन्तोष उमड़ता रहता था। झुँझलाकर पति के मुँह पर ही जाकर कहती :

"तुम्हें तो नाहक परमात्मा ने मर्द बनाया है !"

मोहिनी के पिता इसका कोई जवाब नही देते थे। मोहिनी की माँ उलटी-सीधी सुनाती रहती थी और वह हो-हो करके हँसते रहते थे। उनकी इस हँसी से मोहिनी की माँ के हृदय मे और भी आग लग जाती थी।

मोहिनी की माँ के हृदय की वह आग अब तक ठण्डी नही पड़ी थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके पतिदेव स्वर्ग में बैठे अब भी उसी प्रकार हो-हो कर हँस रहे हैं। बल खा कर वह बोली :

"ऐसा आदमी कही नहीं देखा। लाज-शरम तो उसमें बिल्कुल नहीं रह गई थी। उसकी आँखो के सामने ही मैं ठाकुर रामदीन के यहाँ जाती थी, और वह आँखो पर ठीकरी रखे देखता रहता था !"

मोहिनी ने देखा कि माँ ने अपना पुराना रोना शुरू कर दिया है। पतिया का हाथ पकड़ कर वह खिसकने लगी। दो-चार कदम ही गई होगी कि फिर लौट आयी। अपनी माँ को सम्बोधित कर कहने लगी :

"माँ इसमें कुछ दोष तुम्हारा भी है। तुमने अपने हाथों ही अपना नाश किया है। आँखें बन्द कर तुमने ठाकुर रामदीन का साथ दिया। जब तक रंग-रूप रहा, वह तुम्हारे साथ खेलता रहा। अब आँख दिखाता है। तुम्हारी जगह यदि वह मेरे पल्ले पड़ा होता तो मैं ऐसा नाच नचाती कि पुरखे तक तर जाते !"

मोहिनी की माँ ने इसका कोई उत्तर नही दिया। बस, एकटक मोहिनी और पतिया को साथ जाते देखती रही। पतिया को लेकर मोहिनी स्यामो के कोठे मे पहुँची और उसने एक नया खेल खेलना शुरू कर दिया। स्यामो जब घर से निकला था तो अपने साथ कुछ भी नहीं ले गया था। जो कपड़े पहन कर वह घर से निकला था, उनके अतिरिक्त उसने अपने साथ और कुछ नहीं लिया था।

मोहिनी ने कोठे में जा कर स्वामी के कपड़ों को निकाला। फिर पतिया को अपने पास बुला कर उसे स्वामी की मखमली पाड की धोती पहनाई, स्वामी का कुर्त्ता उसके गले में डाला, दोनों भौंहो के बीच बिन्दी लगाई और फिर कुछ दूर खड़ी होकर पतिया को देखने लगी।

"देखो पतिया", मोहिनी ने कहा, "समझ लो कि तुम हो ठाकुर, और मैं हूँ तुम्हारी प्रेमिका। तुम्हें मुझसे प्रेम करना होगा। यह देखो, इस तरह, जैसे मै बताती हूँ ........."

इसके बाद मोहिनी ने पतिया को बताना शुरू किया कि प्रेमी बनने के लिए कैसे क्या किया जाता है। ठाकुर साहब से शुरू करके मोहिनी गाँव के अन्य आवारा छोकरों की भी नकल करने लगी। इस तरह मोहिनी और पतिया दोनों मिल कर कभी ठाकुर साहब की हँसी उड़ाती और कभी गाँव के किसी अन्य छोकरो की। कभी-कभी वह ऐसे लोगों की भी नकल उतारा करती जिनके बाल तो सफेद हो गये थे, मगर दिल उनका अब तक जवान बना हुआ था!

## १४

ठाकुर रामदीनसिंह की उमर पचास के करीब होगी, पर शरीर से भरे-भूरे थे। किसी प्रकार की शक्ति-हीनता नहीं मालूम पड़ती। खूब पाली पोसी देह थी। गोरे रंग पर घी-दूध की चिकनाई थी। आँखों से वशीकरण दृष्टि से देखते थे। मूँछों की आड़ में अपनी रसिकता छिपा कर ओंठों से धीरे-धीरे प्रकट करते थे। कद ऊँचा था। हाथ मुग्दर के भँजे हुए थे। पैर उनके अखाड़े की मिट्टी खाये थे। गरदन पहलवानी के गुद्दे खा चुकी थी।

ठाकुर साहब ने तीन ब्याह किए, पर तीनों ब्याहता औरतें ससुराल में आकर कुछ महीने रही और फिर स्वर्ग सिधार गयी। यह बात नहीं कि उनकी तीनों पत्नियाँ रुग्ण रही हों। वे खूब तन्दुरुस्त और किसी भी रोग से ग्रसित नहीं थी। फिर भी ठाकुर रामदीनसिंह के साथ रह कर वे न-जाने क्यों चल बसी। इसके बाद चौथा ब्याह करना चाहते थे, पर जब लोग तीनों पत्नियों के स्वर्ग सिधारने की बात सुनते तो चौंक उठते और अपनी लड़कियाँ देने से इन्कार कर देते। ठाकुर साहब के कोई सन्तान भी न थी। उनके भाई-भतीजे और नाती-पोतो का अच्छा-खासा परिवार था, पर उनकी अपनी औलाद कोई न थी। मालदार थे, लेकिन इतने नहीं, जितनी कि उनकी मालियत का नाम था। दरवाजे पर घोड़ा बँधा रहता था। कई जोड़ी बैल थे। कई हल की खेती होती

थी। कुछ जमींदारी भी थी।

बहुत दिनों के बाद ठाकुर साहब ने मोहिनी की माँ को बुलाया था। मोहिनी की माँ आई और आकर दरवाजे पर खड़ी हो गयी। वह प्रतीक्षा कर रही थी कि ठाकुर साहब की नजर उस पर पड़े तो वह आगे बढ़े।

ठाकुर साहब इधर से उधर टहल रहे थे। उनका हृदय एक विचित्र उलझन में फँसा हुआ था। टहलते जाते थे और अपने आप कुछ कहते भी जाते थे। उनके मुँह से निकले शब्द अधूरे पूरे से सुनाई पड़ रहे थे। दरवाजे पर खड़ी मोहिनी की माँ उनके शब्दों को पकड़ने का प्रयत्न कर रही थी।

"अजब तमाशा है!" ठाकुर साहब कह रहे थे, "आदमी न हुआ मैं हौवा हो गया। लड़कियाँ देते लोगों की जान सूखती है। अपनी ओर से मैंने किसी बात की कमी नहीं रखी। खाने को भी अच्छा दिया और पहनने को भी। तिस पर भी कोई न जिये तो इसमें मेरा क्या दोष। एक मरी, दूसरी मरी, तीसरी मरी, और अब......"

इसके बाद ठाकुर साहब क्या कह गये, ठीक तरह से सुनाई नहीं पड़ा। मोहिनी की माँ के जी में आया कि आगे बढ़ कर वह ठाकुर साहब के सामने खड़ी हो जाये, पर रुक गयी। ठाकुर साहब की आवाज फिर साफ सुनाई पड़ने लगी थी।

"यह सब कुछ नहीं", ठाकुर साहब कह रहे थे, "गाँव में मेरे दुश्मनों की कमी नहीं है। बिना मतलब लोग मुझसे जलते हैं। जहाँ किसी से व्याह की बात चली नहीं कि उसे बहका देते हैं। कहते हैं—ठाकुर साहब तो यमदूत हैं। एक छोड़ तीन-तीन को खा गये। अब तुम्हारी लड़की पर नजर पड़ी है। परमात्मा ही खैर करे!"

ठाकुर साहब को एक और भी संदेह था। वह यह कि जिन लड़-

कियों से उनका विवाह हुआ, उनकी मृत्यु में भी कहीं उनके दुश्मनों का हाथ न हो। जहर देने तक की कल्पना ठाकुर साहब करने लगते। इस कल्पना में सत्य का अंश हो चाहे न हो, लेकिन उन्हें बहुत संतोष होता; जब यह इस तरह की बात सोचते :

"नही तो फिर क्या है जो एक नही, दो नही, तीन-तीन ब्याह किये और एक भी जीती नही बची !"

इस समय भी ठाकुर साहब कुछ इसी तरह की बात कहने जा रहे थे कि सहसा उनकी नजर मोहिनी की माँ पर पड़ी। देखते ही बोले :

"मोहिनी की माँ, आओ। तुम तो आजकल ईद का चाँद हो रही हो !'

"ईद का चाँद होना तो बुरा नही," मोहिनी की माँ ने कहा, "जब दिखाई पड़ता है तो साल-भर की उदासी पलक मारते दूर हो जाती है। यह मेरा सौभाग्य है जो..."

"क्या बात कही है !" ठाकुर साहब ने ठहाका लगाते हुए कहा, "देखते ही उदासी दूर हो जाती है। सच कहता हूँ, मोहिनी की माँ, यदि तुम न होती तो मेरे लिये संसार सूना हो जाता !"

मोहिनी की माँ ने कोई उत्तर नही दिया। वह चुपचाप ठाकुर साहब की ओर देखती रही। कुछ देर रुक कर ठाकुर साहब ने फिर कहना शुरू किया :

"ऐसा जाल फैलाया है लोगों ने कि तीसरी के बाद चौथी का रास्ता ही बन्द कर दिया। यह तुम्हारी ही हिम्मत थी मोहिनी की माँ जो ऐसे आड़े समय में भी तुमने मेरा साथ न छोड़ा !"

ठाकुर साहब का अब तक इस बात पर ध्यान नही गया था कि मोहिनी की मा जब से आई है, तब से खड़ी है। अब जो इधर उनका ध्यान गया तो बोले :

"अरे मोहिनी की माँ, तुम अब तक खडी हो। बैठो न। आखिर

यह मसनद किस लिए है !"

मोहिनी की माँ का हाथ पकड़ कर ठाकुर साहब ने मसनद पर बिठा दिया। फिर बोले :—

"न जाने किस बदली में तुम छिपी रहती हो, मोहिनी की माँ! महीनों हो जाते हैं, दिखाई नहीं पड़ती !"

"क्या बताऊँ, ठाकुर साहब," मोहिनी की माँ ने कहा, "इधर मैं अजब मुसीबत में फँसी रही। बिना कुछ कहे-सुने पहले तो पतिया घर छोड़कर चली गयी, फिर एक दिन नारायन और स्वामी भी कहीं भाग गये। इसके साथ-साथ मैं ऐसी बीमार पड़ी कि बस, राम ही मालिक थे .."

ठाकुर साहब ने मोहिनी की माँ की बात को कुछ सुना, कुछ नहीं सुना। असल में उनका ध्यान दूसरी ओर पहुँचा हुआ था। बहुत दिनों से वह मोहिनी की माँ से एक बात पूछना चाहते थे। पर अनेक कारणों से पूछते-पूछते रह जाते थे। एक हिचक-सी थी जो उन्हें अपने मन की बात बाहर रखने से रोकती थी।

"मोहिनी की माँ, एक बात मेरी समझ में नहीं आती," ठाकुर साहब ने कहना शुरू किया, "जब तक तुम्हारे पति जीवित रहे, तब तक तो तुम बेरोक-टोक आती रहीं। न तुमने दिन देखा, न रात। लेकिन जब से तुम्हारे पति की मृत्यु हुई, तब से तुमने आना भी बन्द कर दिया। यह अजब बात है !"

"आप इसे नहीं समझ सकते," मोहिनी की माँ ने कहा और फिर चुपचाप ठाकुर साहब की ओर देखने लगी।

"यह तो टालने की बात हो गयी।" ठाकुर साहब ने कहा, "ऐसी इसमें क्या बात है जो मेरी समझ में नहीं आ सकती !"

"क्या बताऊँ, ठाकुर साहब," मोहिनी की माँ ने कहा, "स्त्री होकर

भी मैं अपने हृदय का रहस्य नहीं समझ पाती। आप तो खैर मर्द ठहरे...!"

"तुम भी खूब हो, मोहिनी की माँ," ठाकुर साहब ने कहा, "जब तक पति जीवित रहा, तब तक तुम्हें मेरी भी जरूरत रही, जब पति मर गया तो मानो मैं भी मर गया...!"

कह कर ठाकुर साहब अपनी हँसी न रोक सके। अपनी बात को पूरा करते न करते हो-हो कर हँसने लगे। मोहिनी की माँ से यह नहीं सहा गया। सहसा उसे अपने पति की हँसी का ध्यान हो आया। उसका मुँह लाल हो गया, वह तमतमा कर बोली :

"मालूम होता है, मेरी हँसी उड़ाने के लिए ही आपने मुझे आज बुलाया है। अच्छी बात है, हँसिये—खूब हँसिये !"

ठाकुर साहब की हँसी पर जैसे पानी पड़ गया। सँभल कर फिर बोले :

"अच्छा बाबा, तुम जो कहती हो, वही ठीक है। नारी के जीवन का रास-रंग—वह जायज हो या नाजायज—सब कुछ उसके पति के जीवित रहने पर निर्भर है।"

ठाकुर साहब की बात सुन कर मोहिनी की माँ चुप हो गयी। मोहिनी ठीक कहती थी कि स्वयं उसी ने अपने हाथों अपना नाश किया है। पति की मृत्यु के बाद वह मोहिनी की माँ पर अपना पूरा अधिकार समझने लगे थे।

"देखो मोहिनी की माँ," कुछ देर रुक कर ठाकुर साहब ने फिर कहा—"इतने दिन हमें खेल करते हो गये। मैं चाहता हूँ कि अब हम-तुम और भी गहरे सूत्र में बँध जाएँ। इसीलिए मैंने तुम्हें आज बुलाया है।"

मोहिनी की माँ प्रश्न सूचक दृष्टि से ठाकुर साहब के मुँह की ओर देख रही थी। उसने कुछ कहा नहीं। चुपचाप ठाकुर साहब की बात के

पूरा होने की प्रतीक्षा करने लगी।

"घर मे मेरे बाद सम्पत्ति की देख-भाल करने वाला कोई नहीं है," ठाकुर साहब ने कहा, "न हो तो मोहिनी का मेरे साथ..."

ठाकुर साहब का यह प्रस्ताव सुन कर मोहिनी की माँ चौंक उठी। ठाकुर साहब इतना आगे बढ़ जायेंगे, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। एकाएक उसे विश्वास नही हुआ कि ठाकुर साहब ऐसा कर सकते हैं।

मोहिनी को लेकर मोहक बातें पहले भी होती रहती थी। रास-रंग की बातें करने के बाद मोहिनी की माँ के बालों मे उँगुलियाँ से कंघी करते हुए कहते :

"बड़ी सुन्दर लग रही हो आज तुम। सच-सच बताना, यह सिंगार किसने किया है?"

"मैंने...!" मोहिनी की माँ कहती और फिर भेद-भरी आँखों से ठाकुर साहब की ओर देखने लगती।

"मै नही मान सकता। यह तो किसी और के हाथो का काम है।"

"न मानें सरकार, मेरे इन हाथों मे अब भी..."

"मै मानता हूँ, पर अब ये कुछ..."

मोहिनी की माँ के हृदय में जैसे फन्दा-सा लगता, फिर कुछ सँभल-कर कहती :

"सरकार भी खूब पहचानते है।"

"बाल पक गये है देखते-देखते। इन निगाहो को धोखा नही हो सकता...!"

"ठीक कहते है, सरकार, आपको धोखा नहीं हो सकता!" मोहिनी की माँ निचले ओंठ को दातों से दबाते हुए कहती—"मैं जब चलने लगी तो मोहिनी ने कहा—सरकार से मिलने जाती है माँ, मैं सिङ्गार कर दूँ।"

इसके बाद ठाकुर साहब को ऐसा प्रतीत होने लगता मानो मोहिनी की माँ नहीं, वरन् स्वयं मोहिनी को उन्होंने पा लिया हो। मोहिनी की माँ भी हृदय में जलन और ओठो पर हँसी लिये ठाकुर साहब का साथ देती। मोहिनी की माँ की आँखें उस समय जैसे कहती प्रतीत होती।

"ठीक कहते हैं, सरकार! आपको कभी धोखा नहीं हो सकता!"

मोहिनी की माँ जानती थी कि इस तरह अधिक दिन नहीं चल सकता, एक न एक दिन तोड़ होकर ही रहेगा। मन की बात को चाहे जितना दबा कर रखो, वह बाहर आये बिना नहीं रहती। अनेक बार ऐसा हो चुका था। मोहिनी की माँ और ठाकुर साहब के मेल में अब वह पहले जैसी मिठास नही रह गई थी। मिठास से अधिक कड़वाहट ही सामने आती थी, और इसके बाद......

आज भी ऐसा ही हुआ। ठाकुर साहब ने जब देखा कि मोहिनी की माँ का मुँह तमतमा उठा है तो अपने को रोक लिया। फिर मोहिनी की माँ के और निकट खिसकते हुये उन्होने कहा :

"तुम बहुत पीली पड़ गई हो, मोहिनी की माँ!"

"बताया न आपसे, मैं बीमार पड़ गई थी और..."

मोहिनी की माँ ने पहले कही गयी बातों को फिर से दोहरा दिया। ठाकुर साहब का ध्यान दूसरी ओर था, इसी से पहली बार मोहिनी की बातों को कुछ नहीं सुना था। बीमारी की बात सुन कर वह मोहिनी की माँ की ओर इस तरह देखने लगे मानो कह रहे हों—

"अच्छा, तुम बीमार पड़ गई थी!"

कुछ देर तक ठाकुर साहब इसी भाव से मोहिनी की माँ की ओर देखते रहे। फिर बोले :

"मालूम होता है, तुम्हारे ओठो की लाली किसी ने चुरा ली है।"

"चुरा नही ली है," मोहिनी की मा ने कहा—"मैंने खुद ही दे दी है।"

"किसे...?"

"जानते तो हैं, सरकार !" कहते-कहते मोहिनी की माँ के ओंठों पर मुस्कराहट खेल गयी, "मेरी चीज पर सिवा मेरी बेटी के और किसका अधिकार हो सकता है।"

"यह तो पूरी ठगई है, मोहिनी की माँ..."

"ठगई !" मोहिनी की माँ ने बीच में ही बात काट कर कहा—"न-न, ठाकुर साहब, आपके साथ ठगई मैं नहीं करूँगी !"

ठाकुर साहब मोहिनी की माँ की ओर इस तरह देखने लगे मानो उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कह रही है।

"सच कहती हूँ, सरकार !" मोहिनी की माँ ने कुछ रुक कर फिर कहना शुरू किया—'अगर आप चाहें तो मोहिनी को आपके कदमो पर लाकर डाल सकती हूँ, और इसके बाद मोहिनी के बाल जब पकने लगें तो...!"

जिस बात को मोहिनी की माँ इतने दिनों से अपने मन मे दबा कर रखने का प्रयत्न करती आ रही थी, आखिर वह प्रकट हो ही गयी। ठाकुर साहब को ऐसा मालूम हुआ मानो जलते अँगारे पर उनका पाँव पड़ गया हो। तमक कर बोले :

"यह क्या बक रही हो, मोहिनी की माँ ! अपनी जबान बन्द करो ! मैं इतना नीच नहीं हूँ जितना कि तुम मुझे......!"

"नहीं-नहीं, आप नीच क्यों होने लगे", मोहिनी की माँ का सारा शरीर एक अंगारा बन चला था, "नीच तो मैं हूँ जो......!"

ठाकुर साहब से दो टूक बातें करने के बाद मोहिनी की माँ जब अपने घर पहुँची तो मोहिनी और पतिया की बातों की कुछ भनक उसके कानों में पड़ी। एक ओर ओट में खड़ी होकर मोहिनी की मां दोनों की बातें सुनने लगी।

"इसी तरह कब तक चलेगा," पतिया कह रही थी, "घर में नाज

का एक दाना तक नहीं है। हमें कुछ-न-कुछ करना चाहिये।"

मोहिनी कुछ क्षण एकटक पतिया की ओर देखती रही। फिर माथे मे बल डालकर बोली :

"क्या करोगी, भौजी, मैं भी तो कुछ सुनूँ।"

"यदि और कुछ नहीं तो दो-चार घर चौका-वासन......"

"चौका-वासन !" मोहिनी ने पतिया की बात बीच में ही काटते हुए कहा, "सच कहती हूँ, भौजी, चौका-वासन करते-करते मर जाओगी, फिर भी तुम्हें इतना नहीं मिलेगा जो......"

पतिया कुछ इस तरह मोहिनी की ओर देखने लगी कि एक ही साँस में मोहिनी अपनी बात को पूरी नहीं कर सकी। कुछ सँभलकर वह फिर बोली,

"यकी न हो तो आजमा कर देख लो। चौका-वासन करके तुम इतना भी न पा सकोगी जितना कि मैं दो-चार बार इधर से उधर आँखें मटका कर......"

मोहिनी की माँ ने एकाएक सामने आकर मोहिनी की बात का जैसे गला घोट दिया। एक बार माँ के जी मे आया कि पतिया और मोहिनी दोनों को बुला कर साफ-साफ सब बातें समझा दे। पर फिर कुछ सोच कर चुप रह गयी।

रात-भर मोहिनी की माँ को नींद नहीं आयी। पड़े-पड़े वह तरह-तरह की बातें सोचती रही। अपने-आप में वह चाहे जैसी रही हो, पर यह वह कभी नहीं चाहती थी कि मोहिनी भी उसी के रास्ते पर चल कर उसी की तरह ठोकर खाये। बहुत कुछ उसने सोचा, पर उसकी यह समझ में न आया कि मोहिनी आग के साथ खेलना तो चाहती है, मगर सोचती यह है कि चाहे जो हो उसका हाथ कभी नहीं जले !

पतिया दो घरों मे पानी भरने का काम करने लगी। एक घर में चौका बासन की नौकरी मिल गयी। इस तरह कुल तीन जगह उसे काम करना पड़ता था। इसके अलावा अपने घर का पूरा काम भी वही करती थी। मोहिनी की तो दुनिया ही दूसरी थी। सास से कुछ होता न था। सारी जिम्मेदारी पतिया के ऊपर आ पड़ी, जैसे उसी के द्वारा उद्धार होना हो। उसमें भी न जाने कहाँ की शक्ति आ गई थी। उसे खुद अपने ऊपर ताज्जुब होता था कि वह कैसे इतना सब कर लेती है।

पतिया की मेहनत से घर फिर सुधर चला। साफ-सुथरा रहने लगा। सवेरे पतिया सबसे पहले उठ कर घर में झाड़ू लगाती। रस्सी कंधे पर डाल और घड़ा बगल में दबा कुएँ से पानी भर लाती। बरतन वगैरह माँजती। बकरियों की देखभाल करती। उनकी मींगनियों के ढेर को डलिया में भर कर घूरे पर फेंक आती। चूल्हे को ठीक करती। गुर्सी में आग जलाती। यही सब करते-करते सूरज की किरणें खपरैल पर फैल जातीं, और घर में उजाला भर जाता।

पतिया ने घर को सँभाल लिया। मोहिनी की माँ इससे बहुत खुश थी। ठाकुर साहब से अलग हो जाने के बाद मोहिनी की माँ भी

घर के काम-धन्धे की ओर अधिक ध्यान देने लगी थी। उसे कुछ ऐसा मालूम होता था कि यदि वह अपनी सारी शक्तियों को बटोर कर नहीं चलेगी तो कहीं की न रहेगी।

पतिया भी ऐसा ही समझती थी। इसी से मोहिनी की माँ और पतिया एक-दूसरे के निकट आ गयी। मोहिनी को यह अच्छा नहीं लगा। घर में वह अब और भी नहीं टिकती थी। उसका बाहर घूमना दिन-दिन बढ़ता जा रहा था।

पतिया के साथ मोहिनी की अब अधिक नहीं पटती थी। इसका अवसर भी नहीं मिलता था। मोहिनी चाहती थी कि पतिया हर घड़ी उसके बनाव-सिंगार में हाथ बँटाया करे, पर पतिया को काम से फुरसत न मिलती थी।

"तुम तो चौका-बासन की होकर रह गयी, भौजी!" जब कभी प्यार उमड़ता तो पतिया के दोनो कंधो पर हाथ रख कर मोहिनी कहती।

"आखिर घर में कोई ऐसा भी तो हो जो..."

बीच मे ही बात काटकर मोहिनी कहती :

"जाओ भौजी, तुम भी योंही रही। तुम से कुछ नही होने का......"

पतिया इसका कुछ उत्तर नही देती। कुछ देर चुप रहने के बाद मोहनी फिर कहती :

"ठीक, अब मेरी समझ मे आया भौजी कि...?"

"क्या समझ मे आया...?" पतिया अचकचा कर पूछती।

"यही कि भैया घर का मोह छोड़ कर क्यों भाग गये? आखिर तुम्हें लेकर वह करते भी क्या...?"

मोहिनी को ऐसा लगता कि पतिया कभी चौका-बासन से ऊपर

उठ कर नहीं देखेगी। वह जैसे नहीं जानना चाहती कि चौका-बासन के अलावा दुनिया में और कुछ भी है। मोहिनी की चिढ़ यहाँ तक बढ़ जाती कि वह घर पर खाना तक न खाती। कहती :

"चौका-बासन की कमाई से मैं अपना पेट नहीं भरूँगी—चाहे मर भले ही जाऊँ !"

मोहिनी के रङ्ग-ढङ्ग माँ को ज़रा अच्छे नहीं लगते। रह-रह कर वह यही सोचती कि किसी तरह मोहिनी को उसके ससुराल भेज सके तो अच्छा हो। मोहिनी से जब कभी वह ऐसा कहती तो वह कुएँ में डूब मरने की धमकी देती। कहती :

"मैं सब कुछ कर सकती हूँ, पर वहाँ मैं नहीं जा सकती।"

एक बात और भी थी। मोहिनी के ससुराल से भी उसे लिवाने के लिए कोई नहीं आ रहा था। माँ को चुप करने के लिए मोहिनी जहाँ और बहुत-सी बातें कहती, वहाँ यह कहना भी न भूलती :

"तुम तो मुझे घर से बाहर निकालने पर तुली हो, माँ ! आखिर वह कैसे है, जो खोज-खबर तक नहीं लेते !"

कुछ देर ठहर कर मोहिनी फिर कहती :

"और फिर मैं तुमसे न खाने को माँगती हूँ, न पहिनने को। दो घड़ी घर में रहना भी न सुहाता हो तो अच्छी बात है, काला मुँह करके जहाँ मुझसे बनेगा, चली जाऊँगी !"

मोहिनी की माँ से कुछ कहते नहीं बनता था। मोहिनी की बातें सुन वह भीतर ही घुट कर रह जाती थी।

एक दिन की बात है। मोहिनी न जाने कहाँ से दूध माँग कर ले आई। पतिया के पास आकर कहने लगी :

"भौजी, यह लो दूध। आज खीर बनेगी"

मोहिनी की माँ ने जो यह सुना तो उससे न रहा गया। तमतमाकर मोहिनी से पूछा :

गये !"

"हाँ, बहुत दिन हो गये। इसी से सोचा कि चलो, मिल आऊँ।"

"अच्छा तो बैठो। मैं अभी आयी।" मोहिनी की माँ ने कहा और उठकर भीतर चली गयी। मोहिनी और पतिया पहले ही खिसक गई थीं। भीतर पहुँच कर मोहिनी की माँ ने पतिया से कहा :

"देख तो, मेहमान के लिए दूध गरम कर देना...न हो तो खीर ही बना लेना !"

मोहिनी भी वहीं थी। माँ की बात सुन कर वह जल-भुन गयी। तीखी आवाज में बोली :

"यह नहीं हो सकता। मेरे दूध को कोई हाथ नहीं लगा सकता !"

"कोई बात नहीं। वसूल कर लेना सब अपने पति से !" माँ ने कहा और कह कर चली गयी।

माँ के जाने के बाद पतिया का मुँह खुला। मोहिनी को कोंचने का मौका देख कर उसने कहा :

"बड़े भाग्यवान् हैं। इतने अच्छे मुहूर्त में आये हैं कि"

"जरूर, खाने को खीर मिलेगी न !" मोहिनी ने पतिया की अधूरी बात को पूरा कर दिया।

रात को माँ ने मोहिनी को समझाना शुरू किया। उसने अपने मन में सोच लिया था कि चाहे जो हो, मोहिनी को इस बार वह भेज कर ही रहेगी। पाल-पोस कर इतना बड़ा कर दिया। अब जाकर अपने घर रहे।

पहले तो मोहिनी ना-नुकर करती रही। बिगड़ी और झुंझलाई भी बहुत। पर माँ ने पीछा न छोड़ा। आखिर तंग आकर मोहिनी ने कहा :

"अच्छी बात है। तुम्हें मुझे कुएँ में ही धकेलना है तो यहीं सही।

"कहाँ से लाई है यह दूध—?"

"कहाँ से लाई हूँ, तुम्हें इसके क्या मतलब !" मोहिनी ने कहा—"तुम्हें अच्छा न लगे तो मत खाना खीर !"

मोहिनी को कोई उत्तर न दे पतिया से माँ ने कहा :

"खबरदार, जो चूल्हे पर इसे चढ़ाया तो। जा, इसी वक्त घूरे पर फेंक कर आ।"

पतिया दरवाजे की ओर बढ़ी ही थी कि बाहर से किसी ने पुकारा :

"स्वामी भैया ! "

पतिया जाते-जाते ठिठक गयी। बोली :

"कोई आया है।'

मोहिनी की माँ ने पूछा :

"कौन है ?"

उत्तर मिला :

"हम हैं, स्वामी के बहनोई '

एक क्षण के लिए मोहिनी, पतिया और मोहिनी की माँ धक्-से रह गयी—मानो अनहोनी बात हो गई हो। फिर कहा:

"भीतर चले आओ।"

मोहिनी की माँ खाट पर बैठ गयी। एक मामूली कद का आदमी आँगन में आ कर खड़ा होकर इन्तजार करने लगा कि सास उठे तो वह पलँग पर बैठे।

सास ने कहा :

"आओ, बैठो। अभी आ रहे हो क्या ?"

"हाँ, गाँव से अभी आ रहा हूँ," बैठते हुए उसने कहा।

"सब अच्छी तरह है ?"

"हाँ।"

"बहुत दिनों पर आये, लाला, तुम तो हम सबको जैसे भूल ही

गये !''

''हाँ, बहुत दिन हो गये । इसी से सोचा कि चलो, मिल आऊँ ।''

''अच्छा तो बैठो । मैं अभी आयी ।'' मोहिनी की माँ ने कहा और उठकर भीतर चली गयी। मोहिनी और पतिया पहले ही खिसक गई थी । भीतर पहुँच कर मोहिनी की माँ ने पतिया से कहा :

''देख तो, मेहमान के लिए दूध गरम कर देना...न हो तो खीर ही बना लेना !''

मोहिनी भी वहीं थी । माँ की बात सुन कर वह जल-भुन गयी । तीखी आवाज में बोली :

''यह नहीं हो सकता । मेरे दूध को कोई हाथ नहीं लगा सकता !''

''कोई बात नहीं । वसूल कर लेना सब अपने पति से !'' माँ ने कहा और कह कर चली गयी ।

माँ के जाने के बाद पतिया का मुँह खुला । मोहिनी को कोंचने का मौका देख कर उसने कहा :

''बड़े भाग्यवान् है । इतने अच्छे मुहूर्त में आये है कि''

''जरूर, खाने को खीर मिलेगी न !'' मोहिनी ने पतिया की अधूरी बात को पूरा कर दिया ।

रात को माँ ने मोहिनी को समझाना शुरू किया । उसने अपने मन में सोच लिया था कि चाहे जो हो, मोहिनी को इस बार वह भेज कर ही रहेगी । पाल-पोस कर इतना बड़ा कर दिया । अब जाकर अपने घर रहे ।

पहले तो मोहिनी ना-नुकर करती रही । बिगड़ी और झुंझलाई भी बहुत । पर माँ ने पीछा न छोड़ा । आखिर तंग आकर मोहिनी ने कहा :

''अच्छी बात है । तुम्हें मुझे कुएँ में ही धकेलना है तो यही सही ।

मैं चली जाऊँगी।"

माँ को एकाएक विश्वास नहीं हुआ। एक बार फिर सुनने के लिए उसने पूछा :

"हाँ-हाँ, चली जाऊँगी," मोहिनी ने कहा—"यकीन न हो तो कसम खाकर कहूँ......"

"न-न, मोहिनी", मां ने कहा, "मुझे तेरा यकीन है। तू जो कहती है, उसे करके रहती है। यह मैं जानती हूँ।"

इसके बाद मां ने मोहिनी को इस तरह दुलारना शुरू किया मानो वह छोटी-सी बच्ची हो और उसे अपने घर से ससुराल के लिए विदा करने की बात ने हृदय को अत्यधिक व्यथित कर दिया हो। इतने प्रेम से माँ ने मोहिनी को अपने हृदय से लगाया मानो इसके बाद उससे फिर कभी मिलना न हो सकेगा।

तीसरे दिन अँधेरे मुँह मोहिनी को विदा करना तय हुआ। दो दिन तक मोहिनी बड़े ढंग से रही। उसने ऐसी कोई बात नहीं की जिससे माँ को चिन्ता हो या उसकी ओर कोई उँगली उठाये। विदा की तैयारी बिना किसी बाधा के होने लगी।

विदा की रात मोहिनी और माँ दोनों बहुत देर तक बातें करते रहे। बातें करते-करते आखिर मोहिनी की माँ ने कहा :

"अब सो जा। अँधेरे मुँह चलना है।"

मोहिनी की माँ की आँखें झपकाना ही आफत हो गया। मोहिनी उठी और चुपचाप गायब हो गयी। माँ ने जब आँखें खोलीं तो धक्-से रह गयी। पहले तो प्रतीक्षा करती रही कि मोहिनी यहीं कहीं होगी। अपने आप आ जायेगी। किन्तु प्रतीक्षा करने पर जब न आयी तो अन्त में हार कर उसके पति से कहा :

"बड़ी पागल लड़की है। न जाने कहाँ जाकर छिप रही। तुम अब जाओ। मैं खुद उसे पहुँचा दूँगी।"

बाद में पता चला कि मोहिनी ठाकुर साहब के यहाँ पहुँच गई है।

माँ ने सुना तो माथा ठोक कर रह गयी !

## १६

मोहिनी के अपना घर छोड़ कर ठाकुर साहब के यहाँ चले जाने के बाद मोहिनी की माँ ने बाहर निकलना बन्द कर दिया। उसे ऐसा मालूम होता था कि मोहिनी ने उसे कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा है। होने को तो मोहिनी की माँ गाँव में पहले भी बदनाम थी। जिधर निकलती थी, उसकी ओर उँगलियाँ उठने लगती थी। गाँव के लोग अपने घर की औरतों को उसकी परछाईं से दूर रखते थे। किन्तु मोहिनी की माँ ने इन सब बातों की कभी परवाह नहीं की। सब कुछ होते हुए भी उसकी आत्मा इतनी नीचे नहीं गिरी थी कि वह सिर तक न उठा सके, चोरों की तरह केवल अँधेरे में ही बाहर निकले।

पहले की बात ही और थी। लोगों के कहने-सुनने की मोहिनी की माँ को जरा भी परवाह नहीं थी। वरन् जितना ही लोग काना-फूसी करते, उसकी ओर उंगलियाँ उठाते, उतना ही अधिक मोहिनी की माँ सिर उठा कर चलती। उठी हुई उँगलियाँ उठी रह जातीं, और मोहिनी की माँ जैसे सब की छाती को रौंदती निकल जाती।

पर अब वैसी बात नहीं थी। पहले जितना अधिक सिर उठा कर मोहिनी की माँ चलती थी, अब उतना ही अधिक उसका सिर नीचा हो गया था। अपने 'पाप' की मोहिनी में फलता और इस तरह प्रकट होता देख उसके पाँव तले की धरती जैसे खिसक गई थी। उठते-बैठते,

दिन-रात, अपने भाग्य को कोसते रहने के सिवा मोहिनी की माँ के लिए जैसे अब और कोई काम नही रह गया था।

पतिया की अवस्था और भी विकट थी। सास के चौबीसो घण्टे रोने-धोने और कोसने से वह तंग आ गयी। मोहिनी के जाने के दो-चार दिन बाद तक अपनी सास की सेवा-टहल में उसने कोई कसर न उठा रखी। किन्तु लाभ इससे कुछ नही हुआ। मोहिनी की माँ जब यंत्रवत् रोना और अपने भाग्य को कोसना शुरू करती तो पतिया के मन मे यही होता कि सब कुछ छोड़ कर वह भी कही भाग जाये। अकेली जान तो उसकी है ही, जहाँ जाएगी, मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट भर लेगी। लेकिन दूसरे ही क्षण फिर कुछ सोच कर अपने सिर को वह झटक देती और इस तरह के विचारों को अपने दिमाग से दूर कर देती।

कभी-कभी, फुरसत मिलने पर, वह अपने पछोहाँ गाँव की भी याद कर लेती। वहाँ की दशा पर उसे रुलाई आती। अनायास ही क्या से क्या हो गया। उस रात अपनी माँ के साथ खेत पर सोने क्या गयी, एक आफत हो गयी। उल्लू की बोली का अब भी जब कभी पतिया को ध्यान आता तो उसका हृदय काँप कर रह जाता।

मँझली की याद भी पतिया को कम न आती। चराते समय उससे मिल न सकी, इसका पतिया को दुख था। न जाने मँझली क्या समझती होगी। अजब है वह भी। अपने आदमी को इतना बुरा-भला कहती है मानो उसका मुँह तक न देखना चाहती हो। लेकिन यह सब तो जैसे ऊपर की बातें थीं। कहने को तो मँझली यही कहती कि उसका पति बहुत बुरा है। जब मारने लगता है तब यह नही सोचता कि कहाँ हाथ पड़ता है, कहाँ नही। फिर भी मँझली के मन मे लड्डू फूटते रहते। वह जितना मारता, उतना ही वह उसे प्यार करती। कौन

जाने, जिसे प्यार करने का अधिकार है, उसे मारने का भी अधिकार हो, और......

मॅंझली के पति में ऐसी क्या बात है, पतिया जानने और समझने का प्रयत्न करती, पर कुछ समझ न पाती। वह मॅंझली से जानना चाहती, पर मॅंझली उसके चिकोटी काट कर रह जाती। वह उसे कुछ नही बताती, उल्टे बनाने लगती। कहती :

"देख, बहुत बातें न बना। मैं सब समझती हूँ। ऊपर से तो पति की निन्दा करना, और फिर एक दिन, बिना मिले ही, चुपचाप ससुराल खिसक जाना। पति के पीछे मुझसे मिलना तक भूल गयी, और अब बातें ऐसे बनाती है मानो... !"

दिन में पतिया को काम से ही फुरसत नही मिलती। रात का समय ही ऐसा होता, जब उसे दम लेने की फुरसत मिलती। अपनी खाट पर लेट कर वह तरह-तरह की बातें सोचती। मोहिनी जब तक घर में रही, भूले भटके भी उसे अपने पति की याद न आती, किन्तु मोहिनी के जाते ही पति की चिन्ता उसे सताने लगी। पतिया बहुतेरा सोचती, अपने हृदय को टटोल कर देखती, पर कुछ समझ न पाती कि पति का ध्यान रह-रह कर उसे क्यो आने लगा है?

यों अपने हृदय में पतिया किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नही करती। लेकिन इसका कारण यह नहीं था कि पतिया को ऐसा प्रतीत नही होता कि उसके हृदय का कोई कोठा सूना है जिसे भरने के लिए उसे अपने पति की जरूरत हो। पेट की भूख का अनुभव वह अवश्य करती थी, और इसके लिए हाडतोड़ मेहनत भी वह करती थी। उसे अपने हाथ-पैरों पर भरोसा था और वह जानती थी कि जहाँ भी वह रहेगी, अपने लिए दो जून रोटियाँ वह पा ही लेगी।

पतिया के हृदय में पति के लिए कोई स्थान नही था। वह जानती थी कि उसका पति यदि लौट आवे तो भी वह उसके साथ नही रह

सकेगी । बात कुछ और ही थी । पति के बारे में जो बहुत-सी बातें अब पतिया के हृदय में उठती थीं, उनमें एक विशेष प्रकार की चिंता ही अधिक उमड़ कर आती थी ।

रह-रह कर वह सोचती :

न जाने वह कहाँ होगा ?

क्या करता होगा ?

पता नहीं, उसकी गुजर कैसे होती होगी ?

वह दु:ख में होगा कि सुख में ?

वहाँ जैसे ही रङ्ग-ढङ्ग अगर अब भी उसके हुए तो......?

सोचते-सोचते पतिया अचकचा-कर रह जाती । उसे बड़ा अटपटा लगता कि यह सब वह क्या सोचने लगी । आदमी चाहे तो क्या नहीं कर सकता । वह स्वयं जब हाथ-पाँव हिला कर दो रोटियों का इन्तजाम कर लेती है तो वह भी कुछ न कुछ करता ही होगा । बे-मतलब वह परेशान हो रही है । दिन-भर काम करती है । रात को भी इन सब बातों के पीछे सोना छोड़ देगी तो कैसे बनेगा । हड्डियों को कुछ देर तो आराम मिलना चाहिये । उसे क्या करना है । पति आए तो भला, न आए तो भला । हाँ, आ जायें तो मास के जी को कुछ ढारस बँध सकती है, नहीं तो......!

इसके बाद एक झटके के साथ इन सब बातों को अपने दिमाग से दूर कर वह सोने का उपक्रम करने लगती । धीरे-धीरे, रोज का काम करना और रात को सोकर हड्डियों की थकान मिटाना, यही पतिया का जीवन था ।

किन्तु विधाता को जैसे यह भी मंजूर नहीं था ।

पतिया के जीवन का तार कुछ कुछ बँध चला था कि एक दिन उसके पति ने एकाएक आकर फिर से अशान्ति का संचार कर दिया ।

१७

पहली झलक में स्वामी अब पहचाना नहीं जाता था, लेकिन नजदीक से देखने में भ्रम नहीं होता था।

उसका पहनावा एकदम साहबी ढंग का था। सिगरेट पीने लगा था। न वह मखमली धोती थी, न वह कुरता। एक पुटमा, उसके नीचे मोजा-जूता, ऊपर कमीज-कोट और उस पर पुरानी गोल टोपी।

इस पहनावे ने उसकी शक्ल बदल दी थी। शरीर से कुछ दुबला जरूर पड़ गया था, पर कमजोर नहीं हुआ था।

घर में जब उसने पाँव रखा, उस समय साँझ हो आई थी। वह साथ में कोई सामान न लाया था। माँ ने उसे सब से पहले देखा और कुछ देर एकटक देखती रही। फिर दौड़ कर गले से लगा लिया। सुख की लहर बहने लगी। माँ ने अपने इतनी उमर वाले बेटे को उसी तरह गोद में विठा लिया जैसे वह चार-पाँच साल का बालक हो। उसकी टोपी उतार डाली। गालों पर हाथ फेरते हुए उसका मुँह चूम लिया। और बड़े प्यार से कहने लगी :

"इस तरह नाराज नहीं हुआ जाता। इतना बड़ा हो गया तुझे समझ नहीं आयी। मेरा दिल रोज तेरे लिए तड़पता अकुलाता था। मैं रोज तेरा इन्तजार करती थी, और गहरी उसांस छोड़ निराशा से दरवाजा बन्द कर लेती थी। तेरी गैरहाजिरी मे बहुत कुछ हो गया।

मैं बीमार पड़ी। खाने को लाले पड़े। बकरियाँ भूखी रहने लगीं। घर में कोई मर्द न रहा। तरह-तरह की परेशानी होने लगी। तूने खबर तक न ली। तेरा कुछ पता न चला कि क्या करता है, कहाँ रहता है। बोलेगा भी, या ऐसे ही गुमसुम बैठा रहेगा? कपड़े तो देखो, एकदम साहब मालूम होता है। ये सब कहाँ से पाये? और नारायण—तुझे उसका भी कुछ पता है?!"

स्वामी बोला :

"कोई खास जगह मेरे रहने की नहीं। जब जहाँ रहना पड़ता है; वहीं रहता हूँ। जब से यहाँ से गया, बस घूमता ही रहा। एक जगह कहीं नहीं टिका। काम ही ऐसा है। एक जगह रहकर नहीं हो सकता। बड़ी-बड़ी दूर जाना पड़ता है। आमदनी भी खूब होती है..."

"अरे, मैं भी कैसी पगली हूँ," बीच में ही बात काट कर माँ ने कहा, "तुझे देख कर मेरी सुध-बुध ही जाती रही। जब से आया है; ऐसे ही बैठा है। न कपड़े उतारे, न कुछ। उठ, कपड़े-वपड़े उतार। कुछ खा-पी ले। दुलहिन, थाली परोस!"

माँ ने मिट्टी के घड़े को नवा कर लोटे में पानी दिया। स्वामी ने हाथ-पैर धोए और खाना खाने लगा। उसकी निगाह बार-बार पतिया के ऊपर पड़ रही थी। पतिया को वह इस तरह देख रहा था जैसे आँखों ही आँखों में उसे लील जायेगा।

पतिया का बस चलता तो वह उठ कर रसोई से भाग जाती, पर यह सम्भव नहीं था। उसकी सास भी वहाँ आ गई थी। बड़े ध्यान से वह स्वामी को देख रही थी। जब उसने देखा कि स्वामी की थाली खाली पड़ी है और पतिया का इस ओर ध्यान नहीं है, तो बोली :

"देखती नहीं दुलहिन, थाली खाली पड़ी है। इतने दिनों बाद तो यह आया है, इस तरह इसे भूखा मारेगी तो यह फिर भाग जायेगा!"

"हाँ माँ, भागूँगा तो मैं जरूर," स्वामी ने कहा, "लेकिन इस

बार साथ में तुम सबको भी भगा कर ले जाऊँगा !"

स्वामी की यह बात सुन कर माँ कुछ अचकचा गयी। खोई-सी आँखों से स्वामी की ओर देखने लगी।

स्वामी ने कुछ सँभल कर कहा :

"इस तरह क्या देख रही हो, माँ ? तुम डरो नहीं। इस बार हम तीनों एक साथ भागेंगे !"

स्वामी जब खाना खा चुका तो माँ ने उसके हाथ घुलाये और दोनों माँ-बेटे एक साथ बैठ कर बातें करने लगे। बातें करते-करते स्वामी अपने चारों ओर इस तरह देखने लगा मानो कोई खोई हुई चीज ढूँढ़ रहा हो। कुछ क्षण देखने के बाद उसने पूछा :

"माँ, मोहिनी नहीं दिखाई पड़ती। क्या ससुराल चली गयी है ?"

स्वामी का यह प्रश्न सुन कर माँ को ऐसा लगा जैसे किसी ने औचक में उसे ऊपर से नीचे धक्का दे दिया हो। मोहिनी की याद जब कभी भी माँ को आती थी तो ऐसा मालूम होता था मानो उसके जीवन का सम्पूर्ण कलुष मूर्तिमान होकर उसकी आँखों के सामने खड़ा हो। आन्तरिक घृणा से माँ अपनी आँखें बन्द कर लेती।

इस समय भी ऐसा ही हुआ। स्वामी का प्रश्न सुन कर जैसे उसकी सम्पूर्ण चेतना लड़खड़ा गयी। अनायास जी में आया कि कहे—भाड़ में जाये मोहिनी, पर फिर सँभल कर रुक गयी। एक क्षण स्वामी की ओर देखने के बाद बोली :

"मोहिनी की बात अभी रहने दे। पहले अपना हाल-चाल बता। इतने दिनों बाद तू आया है। कह तो सही, कहाँ कहाँ रहा ?"

"मैं सब जानता हूँ माँ," स्वामी ने कहा, "मोहिनी के बारे में सब मालूम हो चुका है। गाँव में जब मैंने पाँव रखा तो मेरा पहनावा देख कुछ का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ। रूप-रंग कुछ बदल गया है, इससे लोग पहचान न सके। तुम्हारे घर की ओर आता देख उनकी

उत्सुकता और बढ़ी। लगे कानाफूसी करने और उँगलियाँ उठाने। उन्हें तो इन्ही सब बातों में मजा आता है ? समझे, कोई नया शिकार तुमने फँसाया है। जी में तो आया कि उनका मुँह नोच लूँ, लेकिन...''

कहते-कहते स्वामी रुक गया और अपनी माँ को एकटक देखने लगा। कुछ देर बाद फिर बोला :

''लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते एक ने मुझे पहचान लिया। टोकते हुए बोला—'अरे स्वामी भैया, तुम तो पूरे साहब बन गए हो। पहचाने तक नहीं जाते !' इतना कहने के बाद सबसे जरूरी खबर जो उसने पहले पहल सुनाई वह थी मोहिनी के भागने की !''

अगर धरती फट जाती तो स्वामी की माँ, बिना किसी दुविधा के, इस समय उसमें समा जाती। पर यह होने को नहीं था। धरती की जगह उसका हृदय फटने की तैयारी करने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसका दम घुट रहा हो। कनपटी की नसें तक-तक करने लगी।

''बहुत बड़े बनते हैं ये लोग,'' स्वामी कह रहा था, ''लेकिन तुम देखना माँ, उनके घरों से कितनी मोहिनियों को बाहर निकाल कर मैं ठिकाने लगाता हूँ।''

कुछ देर दोनो चुप रहे। स्वामी जैसे कोई बहुत दूर की और बहुत बड़ी बात सोच रहा था। उसकी माँ अपने को सँभालने का प्रयत्न कर रही थी। उसका जी अब कुछ-कुछ सँभल चला था, और वह स्वामी की बातों का मतलब समझने का प्रयत्न कर रही थी।

''मोहिनी ने अच्छा किया जो भाग गयी'', स्वामी ने फिर कहना शुरू किया, ''मैंने भी यही काम करना शुरू किया है। गरीब घरों की लड़कियों को भगा कर अमीरों के यहाँ पहुँचा देता हूँ। न सही उमर-भर, कुछ दिन तो राजरानी की तरह वे वहाँ सुख से रह पाती हैं ?''

माँ अभी तक ठीक-ठीक समझ नहीं पा रही थी कि स्वामी कह क्या रहा है। एक आध बार जी में आया कि टोक कर अच्छी तरह

पूछे, पर फिर यह सोच कर रह गई कि ऐसा करना ठीक नहीं। माँ को डर था कि जाने वह खुल कर बताये या नहीं। इसलिए उसने मन में तय किया कि पतिया को वह सब बातें समझा देगी। और बाद में पतिया से सब बातें मालूम कर लेगी।

"सच कहता हूँ माँ," स्वामी ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, "इस काम में मुझे पैसा भी खूब मिलता है। अब तुम लोगों को कोई कष्ट नहीं होगा।"

स्वामी की यह अन्तिम बात ऐसी थी जो पूरी तरह माँ की समझ में आ गयी। कहने लगी :

"मेरा क्या है बेटा, मेरी उम्र तो जैसे-तैसे कट गयी। एक पतिया की मुझे फिकर है। जब से इस घर में आई है—उसने न जाना कि सुख क्या होता है। तूने भी उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया..."

"उसके बारे में मैंने सब सोच लिया है माँ," स्वामी ने बीच में ही कहा—"अब तक जो हुआ, उसे छोड़ो। आगे के लिए मैं ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा कि वह राज-सुख भोगे!"

स्वामी बहुत देर तक राज-सुख की बातें करता रहा। ऐसा प्रतीत होता था मानो राज-सुख भोगना या न भोगना उसके बायें हाथ का खेल हो। उसके मुँह से जितनी बातें निकली थी, वे सब राज-सुख में डूब-उतरा रही थी।

"अच्छा तो बेटा," अन्त में माँ ने कहा, "पतिया इतनी देर से अकेली बैठी कुढ़ रही होगी। जाऊँ, जरा उसके बाल-बाल सँवार दूँ। न जाने कब से उसके बालों ने चिकनाई का मुँह नहीं देखा।"

स्वामी उठ कर अपने कोठे में चला गया। माँ पतिया के बाल सँवारने लगी। साथ में बहुत-सी बातें भी समझाती जाती थी। बाल सँवारने के बाद कुछ देर एकटक वह पतिया की ओर देखती रही। फिर बोली:

"जा दुलहिन, जरा समझ से काम लेना। कहीं ऐसा न हो कि

उलटी-सीधी बातें करने लगे।"

फिर पतिया का हाथ पकड कर माँ ने उठाया और राज-सुख भोगने के लिए उसे स्वामी के कोठे तक छोड़ आयी।

पतिया ने भीतर प्रवेश किया और एक जगह जाम होकर इस तरह खड़ी रह गयी मानो उसे काठ मार गया हो !

## १८

स्वामी अपनी माँ से जी खोल कर बातें नहीं कर सका। यह वह चाहता भी नही था कि अपनी माँ को कुछ बताये। इसीलिए माँ जब कुछ पूछती तो अधूरे-पूरे उत्तर देकर वह टाल जाता। ऐसा प्रतीत होता जैसे माँ को अन्धकार में रखने में उसे कुछ सुख, प्राप्त हो रहा हो। इस समय भी अपने कोठे में खाट पर लेटे-लेटे माँ की बेचैनी की कल्पना कर वह मन ही मन एक विचित्र प्रकार के तीखे सन्तोष का अनुभव कर रहा था।

इसी समय पतिया ने कोठे में पाँव रखा और वही, दरवाजे के पास, इस तरह खड़ी रह गयी मानो उसके पाँवों को किसी ने धरती में जड़ दिया हो।

स्वामी ने उसकी ओर देखा और कुछ देर तक देखता रहा। फिर बोला :

"चली न आयो, वहाँ क्यों खड़ी हो ?"

पतिया पर स्वामी की बात का जैसे कोई असर नही हुआ। काठ की मूर्ति की तरह वह वही खड़ी रही। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कूक से चलने वाला खिलौना हो। जब तक कूक भरी रही, चलता रहा। जब कूक समाप्त हो गयी तो खड़ा रह गया।

"डरो नही," स्वामी ने फिर कहा, "बेधड़के चली आओ...।"

पतिया की हालत अजीब थी। वह स्वामी के पास से दूर भागना चाहती थी—बिलकुल उसी तरह जैसे कि हत्यारे के चंगुल से छूट कर कोई निरीह जान भागती है, और फिर भूल कर भी उसके पास जाना नहीं चाहती। लेकिन पतिया के लिए न तो भागना ही सम्भव था, और न स्वामी के पास जाना ही।

स्वामी ने जब देखा कि पतिया के पाँव हरकत नहीं कर रहे हैं तो वह स्वयं उठा और पतिया के पास आकर बोला :

"तुम डरती हो। डरने की बात नहीं। तुम नहीं जानती कि स्वामी अब कितना बदल गया है!"

कुछ देर रुक कर स्वामी ने फिर कहा :

मैं जानता हूँ कि तुमने और मोहिनी ने कितना दुख सहा है। मोहिनी तो अब है नहीं। मेरे लिए तो तुम्हीं अब मोहिनी हो—सच जानो, तुम मेरी बहन के समान हो। तुम्हें लिवाने के लिए मैं आया हूँ और..."

"मैं यहीं ठीक हूँ," पतिया के मुँह से आखिर बोल फूटा—"मुझे यहीं रहने दो। मैं कहीं नहीं जाने की।"

"तुम नहीं समझीं!" स्वामी ने कहा—"अपने साथ ले जाने और रखने के लिए मैं तुम से नहीं कह रहा हूँ। मेरे साथ एक दिन तुम्हारा ब्याह हुआ था, लेकिन वह भी कोई ब्याह था। समझ लो कि मैं मर गया। बिल्कुल नया जन्म लेकर मैं आया हूँ। पुराना रिश्ता भी उसी के साथ खत्म हो गया। मुझसे कोई पूछेगा तो मैं कहूँगा—यह मेरी बहन है। पति का मुँह भी न देखने पायी कि विधवा हो गयी। इसने अब तक यही नहीं जाना कि जीवन का सुख..."

अपनी बात को अधूरी छोड़ स्वामी उँगलियाँ गड़ा-गड़ा कर पतिया का बदन जाँचने लगा। पतिया स्वामी का हाथ झटक कर बोली :

"हटाओ यह सब। मुझे कुछ नहीं चाहिए। बहुत होगा तो मैं..."

स्वामी ने पतिया के मुँह पर हाथ रख दिया। फिर बोला :

"मैं कहता हूँ, तुम्हारे दुःख के दिन अब चले गये। मैं खुद तुम्हें अपने हाथ से विदा करना चाहता हूँ, और ऐसी जगह के लिए विदा करना चाहता हूँ, जहाँ राजरानी की तरह तुम रह सको। बस, एक बार मेरे साथ इस नरक से बाहर निकल चलो।"

पतिया की समझ में न आया कि वह क्या जवाब दे। स्वामी की बातें उसे अच्छा-खासा जंजाल प्रतीत हो रही थीं।

"तुम्हारा डरना ठीक है," स्वामी ने उसे समझाते हुए कहा, "दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है। शुरू-शुरू में सभी को डर लगता है। कई लड़कियाँ तो बेहोश तक हो जाती हैं और..."

"कौन लड़कियाँ ?" पतिया ने बीच में ही टोक कर पूछा, "यह किनकी बात कर रहे हो ?"

"मेरा तो काम ही यह है," स्वामी ने कहा, "तुम्हारी तरह और भी बहुत-सी दुःखी बहनों को इसी तरह समझा-बुझा कर मैंने नरक से उबारा है। वे सब अब सुख से रह रही हैं।"

पतिया ने पूछा :

"कहाँ ले जाते हो इन सबको ?"

"ठहरो, तुम्हें अभी सब बताता हूँ," स्वामी ने कहा और अपने कोट की जेब से एक बंडल बाहर निकाला। फिर बोला : "चल कर उधर खाट पर बैठो तो मैं तुम्हें सब दिखाऊँ !"

पतिया खाट पर बैठ गयी स्वामी भी पास में बैठ गया। बंडल डोरी में बँधा था। खोलने पर कार्ड साइज के अनेक फोटो दिखाते हुए स्वामी ने कहा :

"देखती हो, इसकी क्या हालत है ?"

"बिलकुल भिखारिन मालूम होती है," पतिया ने कहा, "बाल उलझे हुए हैं, कपड़े फटे हुए हैं।"

"ठीक," स्वामी ने कहा, "अब इसे देखो। कुछ पहचानती हो ?"

"नहीं," फिर कुछ देर ध्यान से देखने के बाद पतिया ने कहा :

"यह वही भिखारिन है। देखो, अब कितनी अच्छी हालत में है।"

पतिया ने देखा और बहुत देर तक देखती रही।

स्वामी ने बाकी फोटो भी पतिया के सामने सजा दिये। फिर उनमें से एक को उठा कर पतिया की आँखों के निकट ले जाते हुए कहा :

"इसे ध्यान से देखो।"

पतिया ने फोटो स्वामी के हाथ से ले लिया और देखने लगी।

कुछ रुक कर स्वामी ने कहा

"देखो, मोहिनी से कितना मिलता है। ऐसा मालूम होता है जैसे सचमुच मोहिनी का ही चित्र हो। क्यों, मालूम होता है न ?"

"हाँ है तो बिल्कुल मोहिनी जैसा ही," पतिया ने कहा, "कौन है यह ?"

"अभी तुम्हे सब बताता हूँ," स्वामी ने कहा, "इसे मैंने उस समय पकड़ा था जब कि यह कुएँ मे डूबने जा रही थी।"

"कुएँ मे डूबने जा रही थी ?" पतिया ने चौक कर कहा, "क्यों...?"

"हाँ, यदि अगर जरा भी चूक जाता तो इसका पता तक न चलता। पति- की मार सहते-सहते यह तंग आ गई थी। मायके में इसके कोई रहा नहीं था जो भाग कर वहाँ चली जाती। जब और कुछ नहीं सूझा तो कुएँ में डूबने चली।"

स्वामी कहते-कहते रुक गया और पतिया के मुँह की ओर देखने लगा।

पतिया ने आँखें फाड़े उत्सुकता से पूछा :

"फिर क्या हुआ ?"

"इसके भाग्य अच्छे थे जो कुएँ में कूदने से पहले मेरी नजर इस पर पड़ गयी। पीछे से जाकर मैंने इसे पकड़ लिया। जीवन से इस हद

तक ऊब गई थी कि जीना ही नही चाहती थी। मैंने बहुत समझाया, पर नही मानी। आखिर हार कर मैंने कहा—'अच्छी बात है। तुम जीना नहीं चाहती तो न सही। लेकिन आज न मर कर अगर कल-परसों मरो तो इसमें क्या कुछ बिगड़ जायगा। परमात्मा की कृपा से कुएँ यहाँ बहुत हैं। जब चाहो कूद पड़ना······"

"फिर उसने क्या कहा ?"

पतिया ने अपने धड़कते हृदय पर हाथ रख कर पूछा।

"कहा कुछ नही," स्वामी बोला, "चुपचाप कुछ देर सोचती रही। इसके बाद उसका हाथ पकड़ मैं अपने ठिकाने पर ले गया। कपड़े उतार कर जब उसका बदन देखा तो सब जगह नीली धारियाँ पड़ी हुई थी।"

पतिया सहम गयी। दबे स्वर में पूछा :

"अब वह कहाँ है ?"

"कहाँ है, यह जान कर तुम क्या करोगी ?" स्वामी ने कहा, "हाँ, यह बात जरूर है कि कुएँ में कूदने की बात वह अब बिलकुल भूल गई है।"

इसके बाद पतिया ने कुछ नही कहा। स्वामी भी चुपचाप बैठा रहा। दोनों जाने क्या सोच रहे थे।

एकाएक स्वामी ने मौन भंग किया। बोला :

"इस चित्र को जब मैं देखता हूँ तो मुझे मोहिनी की याद हो आती है। इतने दिनों के बाद जब मैं घर के लिए चला तो रास्ते भर यही सोचता रहा कि सबसे पहले मोहिनी से बातचीत करूँगा। लेकिन जब यहाँ आया तो मोहिनी की परछाई भी देखने को न मिली।"

स्वामी कुछ देर के लिए रुक गया। सब कुछ होते हुए भी वह हृदय से मोहिनी को प्रेम करता था। पहली बार जब उसने घर छोड़ा था तो सबसे अधिक क्रोध अपनी बहन मोहिनी पर ही आया था। गुस्सा तो उसकी माँ को भी आया था, लेकिन माँ के गुस्से का क्या था! उसका तो स्वभाव ही ऐसा था कि चौबीसों घण्टे बड़बड़ाती रहती थी।

घर छोड़ने के बाद वह एकदम चला न गया था। गाँव के छोर पर एक पेड़ के नीचे बैठ गया था। न जाने क्यों उसे आशा थी कि मोहिनी उसे खोजती यहाँ तक जरूर आयेगी। लेकिन जब वह नहीं आयी तो उसे बड़ी निराशा हुई और वह......

"मोहिनी भला यहाँ क्यों आने लगी," स्वामी ने भुंझला कर अपने आप से कहा, "गाँव-भर के लड़कों के साथ घूमने से उसे फुरसत मिले तब न......?"

स्वामी को यह बात बहुत अखरती थी। उसे बहुत बुरा लगता जब मोहिनी उसका साथ छोड़ गाँव के भले-बुरे लड़कों के साथ धूल फाँकती फिरती। इसके साथ-साथ स्वामी की झुंझलाहट का एक कारण और भी था। वह यह कि उसकी बहन तो सबके साथ घूमती-फिरती है और गाँव में जितनी भी अन्य लड़कियाँ हैं, उनमें से एक भी स्वामी की ओर आँख तक उठा कर नहीं देखती। कभी एक-आध बार कोई उसकी ओर देखती भी तो उसे चिढ़ाने या उसकी हँसी उड़ाने के लिए। यह बात स्वामी को बहुत बुरी लगती। वह मन ही मन खीज उठता और झुंझला कर सोचता :

"आखिर उसकी बहन को ही ऐसी क्या पड़ी है जो गाँव-भर में धूल फाँकती फिरती है!"

जितना ही स्वामी इस बात को सोचता, उतना ही उसके हृदय में एक कसक-सी उठती और वह चाहता कि मोहिनी घर से बाहर पाँव न रखे। कई बार उसने मोहिनी को घेर-घार कर रखने का प्रयत्न भी किया। लेकिन घिर कर रहना मोहिनी ने सीखा नहीं था। स्वामी के हृदय में लपटें-सी उठने लगतीं उस समय जब वह देखता कि गाँव के लड़कों के साथ मिल कर स्वयं मोहिनी अपने भाई का मजाक उड़ाने पर तुली है, और खिल-खिला कर हँस रही है।

इस समय भी स्वामी के मन में मोहिनी की वह सब बातें घूम

गयी। मोहिनी से मेल खानेवाले फोटो को हाथ में लेकर कुछ देर तक वह देखता रहा। फिर बोला :

"मोहिनी नहीं जानती कि मैं उसे कितना चाहता हूँ। उसे अगर पता होता तो वह मुझसे इतनी दूर-दूर कभी न रहती और जब तक मैं लौटकर न आता, इस तरह घर छोड़ कर न भाग जाती। लेकिन..."

"लेकिन क्या ?" पतिया ने पूछा।

"लेकिन यह कि घर में कोई चैन से बैठने दे तब न ?" स्वामी ने कहा, "जो तसवीरें तुमने अभी देखी हैं, जानती हो, ये सब कौन हैं ? मोहिनी कोई अकेली थोड़े ही है। उसकी तरह न जाने कितनी..."

मोहिनी के प्रसंग को अधूरा छोड़ और एकाएक पतिया को सम्बोधित कर स्वामी ने पूछा :

"अब एक तुम ही रह गई हो। मोहिनी के बदले तुमको ही मैंने अपनी धर्म की बहन बना लिया है। बोलो, मेरी बात मानोगी न ?"

"हाँ, मानूँगी। जो तुम कहोगे, करूँगी," पतिया ने कहा और नीचे धरती की ओर देखने लगी।

"तुम बहुत अच्छी हो पतिया," स्वामी ने कहा और इसके बाद चुप हो गया। फिर उसने पतिया से कुछ नहीं कहा। बहुत देर तक दोनों एक ही खाट पर पड़े न जाने क्या-क्या सोचते रहे। नींद न स्वामी को आयी, न पतिया को। स्वामी की तो जैसे मुँहमाँगी मुराद पूरी हो गई थी। उसे न अब कुछ कहने की जरूरत थी, न सुनने की। लेकिन पतिया के साथ ऐसी कोई बात नहीं थी। उसकी छाती पर रात जैसे पहाड़ बन कर बैठ गई थी। कई बार उसके मन में आया कि न हो तो स्वामी से ही बातें करे, लेकिन साहस न हुआ और उसी प्रकार अपने मन को दबाये एकटक कड़ियों की ओर देखती रही।

१६

रात के तीसरे पहर तक पतिया की आँख नहीं लगी। इसलिए दूसरे दिन बहुत देर तक वह सोती रही। स्वामी न जाने कब उठ कर बाहर घूमने चला गया था और माँ बड़ी उत्सुकता से पतिया के जागने की प्रतीक्षा कर रही थी। कई बार उसके जी में आया कि पतिया को जाकर जगा दे, स्वामी के कोठे तक वह कई बार गयी भी और कुछ देर तक, मुग्ध भाव से, नींद में बेसुध पतिया को देखती रही, पर उसे जगाने का साहस न कर सकी। रह-रह कर यही वह सोचती कि इतने दिनों बाद दोनों मिले हैं। रात-भर बातें करते रहे होंगे। जब सोयेंगे नहीं तो जल्दी आँख कैसे खुलेगी। बहुत दिन बाद पतिया का भाग जागा है। राम करे, वह सदा इसी तरह सुहागिन बनी रहे।

पतिया के सिराहने खड़ी माँ यह सब बातें सोच रही थी। इतने में पतिया ने हलकी-सी कराह के साथ करवट ली। माँ उसे हिलते देख दबे पाँव इस तरह भागी कि यदि पतिया ने देख लिया तो उसकी चोरी पकड़ी जायगी। आँगन में जब पहुँच गयी तब उसने सन्तोष की साँस ली, और एक जगह बैठ कर पतिया के जागने की प्रतीक्षा करने लगी। कुछ देर बाद उसका जी फिर ऊबने लगा और उठ कर फिर स्वामी के कोठे

७

में पहुँची। इस बार उसकी दृष्टि पतिया के बालों पर टिक कर रह गयी। जैसे बाल सँवार कर उसने पतिया को स्वामी के पास भेजा था, वे ठीक वैसे ही बने हुए थे। एक बाल भी इधर से उधर नहीं हुआ था। यह देख कर माँ का हृदय मसोस उठा। वह सोचने लगी कि ऐसा तो नहीं होना चाहिये। पतिया तो इस तरह पड़ी है मानो इसके किसी ने हाथ तक न लगाया हो—एकदम अछुवाई!

माँ के हृदय ने झटका खाया और पतिया को पहले की तरह अधिक देर तक एकटक देखते रहना उसके लिए सम्भव नहीं रहा। लौट कर वह फिर अपने आँगन में आ गयी और अपने मन को तरह-तरह से समझाने और भुलावे में डालने का प्रयत्न करने लगी।

"यह सब कुछ नहीं," उसने अपने मन में कहा,—"इतनी जरा-सी बात भी मेरी समझ में नहीं आयी। इतने दिनों बाद दोनों मिले हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि दोनों मिलते ही एक-दूसरे से कुश्ती-सी लड़ने लगते। बेसुध हो स्वामी पतिया के बाल और बदन नोचता, और पतिया उसके कपड़े फाड़ती !"

इसके बाद माँ को अपनी बात पर खूब हँसी आयी और वह अपने-आप खुल कर हँसने लगी। सारे घर में हँसी गूँज उठी। उस समय यदि माँ को कोई देखता तो यही समझता कि वह पागल हो गयी है। उसकी हँसी बन्द हुई उस समय जब पतिया सामने आ कर खड़ी हो गयी।

हँसने की आवाज ने ही पतिया की नींद को भङ्ग कर दिया था।

"क्या बात है," पतिया ने पूछा, "इस तरह क्यों हँस रही हो ?"

पतिया की आवाज सुनते ही उसकी सास की हँसी बन्द हो गयी। इस समय उसकी मुखमुद्रा देख कर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि एक क्षण पहले इस मुँह से हँसी की बाढ़ फूट रही थी।

"बहुत दिनो बाद आज मुझे लगा कि इस घर में आदमी रहते हैं," सास ने बात बनाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "सुबह से ही आज मेरा

जो इतना हलका था कि हँसी अपने-आप छलकी पड़ती थी।"

"लेकिन मुझे देखते ही तुमने हँसना बन्द क्यों कर दिया ? जब तक अकेली बैठी थीं, तब तक तो हँसती रही, मेरे आते ही..."

"तो क्या मैं हँसती ही जाऊँगी ? तुझसे बातें भी तो करनी हैं। आ, मेरे पास बैठ। सब बातें एक-एक करके बता।"

"क्या बताऊँ ?" अपनी सास के पास बैठते हुए पतिया ने पूछा।

"स्वामी की बात बता—कहाँ रहा, क्या करता है, अब तो कहीं नहीं जायगा ?" पतिया की सास ने एक साथ प्रश्नों की झड़ी लगा दी, "तुझसे और क्या-क्या बातें हुईं ? मेरे बारे में कुछ कहता था...?"

"अपने बारे में तो उसने कुछ नहीं कहा, न यह साफ-साफ बताया कि क्या करता है। बस, यही कहता रहा कि अब सब के अच्छे दिन आ गये हैं। बहुत दिन दुःख भोग लिया, अब...।"

"अब तो वह खूब कमाने लगा है न !" सास ने उत्साहित होकर कहा।

"हाँ पैसों की अब उसके पास कमी नहीं।" पतिया ने कहा, "मोहिनी की बहुत याद करता था। सारी रात उसी की बातें करता रहा। कहता था—यह घर ही ऐसा है, जिसमें कोई नहीं रह सकता। मैं अगर कुछ दिन और न आता तो इस घर में कोई चिड़ी का पूत भी नहीं दिखाई पड़ता।"

"और क्या कहता था ?"सास ने व्यग्रता प्रकट करते हुए पूछा।

"मुझे अपने साथ ले जाने को कहता था। मैंने तो बहुतेरा मना किया, पर वह नहीं माना। यह घर उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। इसमें किसी को नहीं रहने देना चाहता। खुद भी आज-कल में चले जाने की बात करता था।"

"क्यों, यहाँ रहने में क्या बुराई है ? इतने दिनों बाद आया है। मैं अब उसे कहीं न जाने दूँगी।"

"यही तो मैंने भी कहा," पतिया ने कहा, "पर उसके मन पर मेरी बात चढ़ी ही नही। उसे तो बस जाने की धुन सवार है।"

पतिया की सास का हृदय यह सुन कर ठक् से रह गया। कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा :

"जरूर इसमें कोई न कोई बात है।"

"हाँ, "कोई न कोई बात तो जरूर है," पतिया ने कहा और अपनी सास के मुँह की ओर देखने लगी।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि स्वामी पर किसी ने कुछ कर दिया है," कह कर माँ चुप हो गयी। कुछ देर बाद फिर बोली :

"किसी तरह दो-चार दिन तक तू उसे रोके रह। यहाँ से दो-तीन मील दूर गढ़ी में एक बाबा जी रहते हैं। उनसे सब पता लग जायेगा कि बात क्या है?"

सास की बात सुन कर पतिया का हृदय आशंकित हो उठा। इस घर में स्वामी के साथ अकेली तो वह कभी न रहेगी। कौन जाने, वह किस समय क्या कर बैठे। नही, वह सास को कहीं नहीं जाने देगी। घबरा कर बोली :

"मुझ से अकेले रहते नही बनेगा। जब तक वह है, तब तक तुम कहीं न जाओ।"

"दुत् पगली," सास ने कहा, "अपने पति के साथ तू रहेगी। मुझ बुढ़िया का तो अब तुम दोनों के बीच से चले जाना ही ठीक है।"

"नहीं-नहीं, तुम कहीं न जाओ। जब तक वह है, तब तक......"

पतिया की बात को सास ने सुन कर भी अनसुना कर दिया। सास के चले जाने पर पतिया के हृदय में अनेक उलटी-सीधी आशंकाएँ उठने लगी। जैसे-जैसे रात निकट आती जाती थी, उसकी आशंकाएँ और और भी घनीभूत होती जाती थी।

२०

डरने का कोई प्रत्यक्ष कारण न होते हुए भी पतिया का हृदय बैठा जा रहा था। उसने बहुतेरा रोकना चाहा, पर उसकी सांस चली ही गयी। स्वामी जब बाहर से घूम-घाम कर आया तो उसने देखा, पतिया के सिवा घर में और कोई नही है। उसने पतिया से पूछा :

"माँ कहाँ है ?"

"अपनी एक सखी के यहाँ गई हैं," पतिया ने कहा, "जब मे तुम यहाँ से गये, उनका घर से निकलना नही होता था। अब आ गये हो तो सोचा......"

"ठीक है," स्वामी ने कहा और सिर झुका कर जैसे कुछ सोचने लगा। फिर थोड़ी देर बाद बोला :

"माँ बहुत समझदार हो गई हैं।"

"क्यों...?" पतिया ने पूछा।

"सोचा होगा," स्वामी ने कहा, "बहू-बेटे के सुख में उनके घर में रहने से बाधा पड़ेगी, इसलिए......"

स्वामी ने अपनी बात को जान बूझ कर अधूरा छोड़ दिया। उसे डर था कि कहीं पतिया बुरा न मान जाये। इस बार जब से वह आया था, पतिया का बहुत ध्यान रख रहा था। जाने-अनजाने कोई ऐसी बात

मुंह से नहीं निकालता जिससे पतिया का जी दुखे। बड़ी सावधानी के साथ फूंक-फूंक कर पांव रखता और पतिया के हृदय की थाह लेता।

स्वामी सुबह का गया दोपहर को घर लौटा था। थोड़ी देर घर में रहा और फिर चला गया। जाते-जाते वह पतिया से कह गया:

"देख पतिया, आज मेरा एक साथी आने वाला है। वह बहुत बड़ा आदमी है। मेरे साथ ही वह टिकेगा। खाने-पीने को जरा ठीक से बना लेना।"

पतिया चुपचाप सुनती रही और स्वामी उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा न कर चला गया। हां, जाते-जाते इतना और सूचित करता गया कि उसे आने में अगर कुछ देर हो जाय तो पतिया घबराये नहीं। अपने साथ को लेकर ही वह आयेगा।

पतिया का मन, भीतर ही भीतर, घुटा जा रहा था। स्वामी के सतर्क और शान्त व्यवहार ने उसे और भी विचलित कर दिया था। घर में और कोई नहीं था। न जाने कैसे आदमी को लेकर वह आये। उसे अगर पहले से मालूम होता तो वह सास को किसी तरह न जाने देती। मनाने पर भी सास न मानती तो वह भी उनके पीछे-पीछे चल देती। लेकिन अब...?

अंधेरी रात जैसे-जैसे घिरती आती जाती थी, पतिया के हृदय का अंधेरा और भी घना होता जाता था। अपने हृदय को टटोल कर देखने का वह प्रयत्न करती, पर कुछ सुझाई न देता। ऐसी ही तो अंधेरी रात थी वह, जब पहली बार स्वामी से उसकी मुठभेड़ हुई थी। ऐसा ही अंधेरा था वह जो उसकी सुहाग रात के दिन उसे समूचा निगला गया था। और ऐसी ही अंधेरी रात थी वह जब खेत में उल्लू बोला था और...

उस अंधेरी रात का ध्यान कर पतिया कांप उठी जिसने उसकी मां की जान ली थी। आज की रात ठीक वैसी ही अंधेरी थी। अंधेरा घिरता ही चला आ रहा था और ऐसा प्रतीत होता था जैसे पतिया

को वह कहीं का न छोड़ेगा।

जितना ही पतिया सोचती, उतना ही उसकी आशंकाएँ बढ़ती जाती। सहसा कुंडी के खटखटाने की आवाज सुन कर चौंक उठी। उसकी सम्पूर्ण चेतना जैसे उसका साथ छोड़ कर भागने के लिए तैयार हो गयी।

कुंडी के खटखटाने की आवाज बराबर आ रही थी। साथ ही स्वामी की आवाज भी उसके कानों में पड़ी। जैसे-तैसे उठ कर गयी और उसने कुंडी खोल दी। पतिया ने कुंडी इतनी सावधानी से खोली कि जरा भी खटका न हुआ—या फिर खटका हुआ भी तो वह स्वामी के कानों तक नही पहुँचा। कुंडी खटखटाने के बाद भी स्वामी अपने साथी से बात करने मे लगा रहा।

पतिया कुंडी खोल कर चुपचाप खिसक आयी।

कुछ देर के बाद स्वामी ने कुंडी के स्थान पर किवाड़ो को थपथपाने के लिए हाथ बढ़ाया। उसके हाथ का स्पर्श पाते ही किवाड़ खुल गये। पहले स्वामी ने घर में प्रवेश किया, फिर अपने साथी को अकेला छोड़ स्वामी पतिया के कोठे मे आया। बोला :

"बहुत देर हो गयी पतिया, कुछ खाना-वाना बनाया है ?"

"हाँ, सब तैयार है" पतिया ने कहा।

स्वामी और उसका साथी जब तक भोजन करते रहे, स्वामी पतिया की ही प्रशंसा करता रहा। पतिया ने अपनी इतनी प्रशंसा पहले कभी न सुनी थी। भोजन के बाद स्वामी ने अपने और अपने साथी के सोने का प्रबन्ध बाहर के कोठे में किया।

"तुम्हें डर तो नही लगेगा, पतिया ?" स्वामी ने पतिया से पूछा—"मैं तो अपने साथी के साथ सोऊँगा। घर मे आज माँ भी नहीं है। तू बिलकुल अकेली पड़ जायेगी।"

"मेरा सारा जीवन अकेले रहते ही बीता है," अपने हृदय की वास्तविक स्थिति को स्वामी की आँखों से बचाने का प्रयत्न करते हुए पतिया

ने कहा, "तुम चिन्ता न करो। मैं अकेली अच्छी तरह रह सकती हूँ।"

स्वामी अपने साथी के पास चला गया। स्वामी और उसका साथी दोनों इस तरह बातें करते रहे मानो इस घर में सिवा उन दोनों के और कोई नहीं है। पतिया लेटी तो थी अपने कोठे मे, लेकिन उसका मन और कान लगे हुए थे स्वामी और उसके साथी की बातों की ओर।

अधूरे-पूरे वाक्य पतिया को सुनाई दे रहे थे। यह समझने में पतिया को देर नही लगी कि दोनों रुपये-पैसों की बातें कर रहे है। कितनी देर तक दोनों झगड़ते रहे। पतिया को ऐसा मालूम हुआ जैसे दोनों कोई सौदा करना चाहते है, मगर कुछ कसर रह जाने के कारण दोनों एकमत नहीं हो पा रहे हैं। कई बार पतिया को यह भी सुनाई पडा कि सौदे के सिलसिले में उसका नाम भी लिया जा रहा है।

एकाएक स्वामी का स्वर धीमा पड़ गया। उसने अपने साथी से दबी आवाज में कहा :

"कौन जाने, पतिया अभी तक जाग रही हो। धीरे-धीरे बातें करो। ऐसा न हो कि..."

इसके बाद स्वामी का स्वर जैसे कही खो गया। आगे उसने क्या कहा, पतिया कुछ सुन नही सकी। अब दोनों धीरे-धीरे बातें करने लगे। कभी कभी एक-आध शब्द सुनाई पड जाता। कुछ देर बाद यह भी बन्द हो गया। ऐसा मालूम होता था कि दोनो सो गये हैं।

पतिया के जी में चैन जरा भी नही थी। अनेक आशंकाओं से उसका हृदय घिरा था। उसे ऐसा प्रतीत होता था जैसे उस पर कोई नई विपत्ति आने वाली है। लेकिन यह वह नही जानती थी कि उस विपत्ति की रूप-रेखा क्या होगी। एक तरह का अज्ञात भय उसके हृदय और मस्तिष्क में छाता जा रहा था। उसकी सम्पूर्ण चेतना, जैसे एक जगह केन्द्रित हो, आनेवाली विपत्ति के पाँवों की आहट पकड़ने का प्रयत्न कर रही थी।

घण्टा भर तक पतिया इसी अवस्था में पड़ी रही। लेकिन उसे किसी प्रकार की आहट नही सुनाई दी। चारों ओर भयंकर सन्नाटा छाया था। सन्नाटा इतना गंभीर मालूम होता था, जैसे स्वयं पतिया के हृदय ने भी वातावरण के साथ-साथ सन्नाटा खींच लिया हो। इस अवस्था मे अधिक देर तक पड़े रहना पतिया के लिए असह्य हो उठा। उसने अपने साहस को बटोरा, उठ कर बैठ गयी। अन्धकार के बीच धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि उसका भय बेमतलब है। पतिया के मन और शरीर का खिचाव कुछ कम हुआ, और लेट कर वह फिर सोने का उपक्रम करने लगी।

कुछ देर बाद पतिया को झपकी-सी आ गयी। लेकिन उसका भीतरी मन जैसे अब भी चेतन था। शरीर जैसे उसका सोया पडा था, और मन जाग रहा था। एकाएक उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके कोठे मे किसी ने प्रवेश किया हो। आहट उसे किसी प्रकार की सुनाई नहीं पड़ रही थी, लेकिन फिर भी उसे ऐसा प्रतीत होता था कि कोठे में कोई आ गया है और दुनिवार उसकी ओर बढ रहा है।

पतिया एकाएक कुछ निश्चय नही कर सकी कि वह सपना देख रही है या वास्तव में कोई उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। एक तरह से दम साधे वह पडी रही। उसके भय ने एक विचित्र रूप धारण कर लिया। वह न तो इस हद तक दूर हुआ कि पतिया को नींद आ जाये, और न वह इतना अधिक ही बढा कि उसकी नींद एकाएक भंग हो जाये और वह देखे कि...

पतिया आँखें मूँदे पड़ी थी। कोठे में जो दिया जल रहा था, वह भी जैसे अपनी आँखें मूँदने के लिए तैयार बैठा था। तभी स्वामी कोठे में दबे पाँव आया। पतिया ने मन-ही-मन अनुभव किया कि उसके कोठे में कोई आ गया है। आगे बढ़ कर स्वामी ने पहले दिये की बाती को

कुछ सँभले, स्वामी ने कहा :

क्या इसी धोती को पहन कर चलोगी। नहीं, उतारो, इसे, जल्दी करो, मेरे मुँह की ओर देखने से काम न चलेगा!"

स्वामी एकाएक पतिया की धोती पकड़ कर खींचने लगा। पतिया एक चीख मार कर दोहरी हो गयी। इसी समय स्वामी इस तरह चिल्लाया मानो इसके हाथ में बिच्छू ने काट लिया हो। स्वामी की आवाज सुन पतिया सहम गयी। तभी स्वामी की आवाज सुन उसका साथी भी आ गया। बोला .

"क्या है स्वामी?"

"कुछ नहीं," स्वामी ने कहा और फिर पतिया की ओर संकेत करता हुआ बोला - "देखते हो इसे, लाज के मारे दोहरी हुई जा रही है! मैं कहता हूँ.. ...।"

स्वामी की बात बीच में ही रह गयी। बाहर का दरवाजा बुरी तरह धड़धड़ा रहा था। साथ आवाज आ रही थी :

"जल्दी दरवाजा खोलो। नही तो दरवाजा तोड़ कर..."

स्वामी और उसके साथी के कान खड़े हो गये। पतिया को छोड़ दरवाजे की ओर स्वामी बढ़ा। देखा कि कई लट्ठबन्द आदमी खड़े है। उनमें से एक ने कहा :

"मोहिनी यहाँ आयी है? ठाकुर साहब के गहने पत्ते लेकर वह भाग गयी। यहाँ आयी होगी। उसे बाहर निकालो।"

स्वामी ने सुना तो हक्का-बक्का रह गया। उसने सँभल कर कहा :

"नहीं, यहाँ मोहिनी नहीं आयी। उसकी तो शकल तक मैंने नही देखी।"

"हमें तुम्हारी बात का यकीन नही। तुम एक ओर हट जाओ। हम तुम्हारे घर की तलाशी लेंगे।"

कहते हुए वे घर में घुस आये। सबसे पहले पतिया पर उनकी

चेतन किया, और फिर पतिया का हाथ उठा कर अपने हाथ में ले लिया।

अंतिम सीमा आने पर बुरा सपना देखने वाले व्यक्ति की जो दशा होती है और अन्त में जिस प्रकार भय से वह चीख उठता है, ठीक उसी प्रकार एक चीख के साथ पतिया चौंक उठी। पतिया के माथे पर पसीने की बूंदें उमड़ आई थीं और उसका हृदय बुरी तरह धक्-धक् कर रहा था।

"मैं पहले ही कहता था पतिया," स्वामी ने उसकी कमर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अकेले में तुझे डर लगेगा। मेरा साथी जब सो गया तो मुझसे रहा नहीं गया और मैं चला आया।"

पतिया ने एक बार स्वामी के मुंह की ओर देखा और फिर सिर झुका लिया। उसका हृदय अभी धक्-धक् कर रहा था।

"तेरा लड़कपन अभी तक गया नहीं पतिया," स्वामी ने कहा, "भला इस तरह भी कोई चीखता है। मेरा साथी तेरी चीख सुन कर अगर यहां आ जाता तो ..."

साथी का नाम सुन कर पतिया का हृदय चौंक उठा। कुछ सँभल कर फिर उसने कहा :

"मैं सपना देख रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि दो-चार आदमी मेरे कोठे में घुस आये हैं और मुझे जबर्दस्ती उठा कर..."

स्वामी यह सुन कर हँस पड़ा। फिर अपनी हँसी को रोक कर बोला :

"सपना तो तुम सच्चा देख रही थी। तुम्हें भगा कर ले जाने की पूरी तैयारी मैंने कर ली है। उठो, चलो।"

कह कर स्वामी पतिया को हाथ पकड़ कर उठाने का प्रयत्न करने लगा। पतिया एकाएक समझ न सकी कि बात क्या है। स्वामी ने उसका हाथ पकड़ कर खड़ा कर दिया। इससे पहले कि पतिया

कुछ सँभले, स्वामी ने कहा :

क्या इसी धोती को पहन कर चलोगी । नहीं, उतारो, इसे, जल्दी करो, मेरे मुंह की ओर देखने से काम न चलेगा !"

स्वामी एकाएक पतिया की धोती पकड़ कर खींचने लगा। पतिया एक चीख मार कर दोहरी हो गयी। इसी समय स्वामी इस तरह चिल्लाया मानो इसके हाथ में बिच्छू ने काट लिया हो। स्वामी की आवाज सुन पतिया सहम गयी। तभी स्वामी की आवाज सुन उसका साथी भी आ गया। बोला :

"क्या है स्वामी ?"

"कुछ नहीं," स्वामी ने कहा और फिर पतिया की ओर संकेत करता हुआ बोला - "देखते हो इसे, लाज के मारे दोहरी हुई जा रही है ! मैं कहता हूँ.. ... ।"

स्वामी की बात बीच में ही रह गयी। बाहर का दरवाजा बुरी तरह धड़धड़ा रहा था। साथ आवाज आ रही थी :

"जल्दी दरवाजा खोलो । नहीं तो दरवाजा तोड़ कर..."

स्वामी और उसके साथी के कान खड़े हो गये। पतिया को छोड़ दरवाजे की ओर स्वामी बढ़ा। देखा कि कई लट्ठबन्द आदमी खड़े हैं। उनमें से एक ने कहा :

"मोहिनी यहाँ आयी है ? ठाकुर साहब के गहने पत्ते लेकर वह भाग गयी । यहाँ आयी होगी । उसे बाहर निकालो ।"

स्वामी ने सुना तो हक्का-बक्का रह गया । उसने सँभल कर कहा :

"नहीं, यहाँ मोहिनी नहीं आयी। उसकी तो शकल तक मैंने नहीं देखी।"

"हमें तुम्हारी बात का यकीन नहीं । तुम एक ओर हट जाओ । हम तुम्हारे घर की तलाशी लेंगे ।"

कहते हुए वे घर में घुस आये। सबसे पहले पतिया पर उनकी

नजर पड़ी। जैसे-तैसे धोती लपेटे वह एक ओर खड़ी थी। समझे कि यही मोहिनी है। लेकिन जब मुँह उघाड़ कर देखा तो उसे छोड़ दिया और घर के कोने-कोने की खोज करने लगे। स्वामी और उसके साथी को दो आदमियों की निगरानी में एक जगह खड़ा कर दिया गया।

स्वामी और उसके साथी दोनों को ठाकुर के आदमी अपने साथ पकड़ कर ले गये। उन्हें सन्देह था कि मोहिनी को स्वामी ने किसी दूसरी जगह छिपा दिया है। उनके चले जाने पर पतिया को अवसर मिला। बदन पर धोती लपेट वह घर से निकल बाहर सड़क पर आ गयी और तेजी से बढ़ चली। उसे कुछ पता नहीं था कि वह कहाँ जा रही है। ऐसा मालूम होता था जैसे वह चलती ही जायगी, रुकेगी नहीं।

पतिया रात में ही घर से निकल पड़ी थी। भोर होने से पहिले ही वह दस कोस चल कर स्टेशन पहुँच गयी।

उसकी माँ मर चुकी थी और मरने से पहले मायके का दरवाजा उसके लिए बन्द कर गई थी। सो पछौहाँ का रास्ता उसने नहीं पकड़ा, आँखें बन्द किए बस चलती ही गयी। किन्तु जैसे-जैसे रात ढल रही थी, उसके मन में एक यही चिन्ता बलवती होती जा रही थी कि अब वह कहाँ जायेगी, कहाँ रहेगी?

स्टेशन पर पहुँच कर वह एक कोने में बैठ गयी। लगता था मानो आँख-मिचौनी के चोर से बचने के लिये दुबक गयी हो।

"अरे भौजी तुम!"

पतिया ने नजर उठा कर देखा तो सामने मोहिनी एक बड़ी सी पोटली हाथ में लिए मुस्करा रही थी।

"अच्छा हुआ जो तुम मिल गयीं, मुझ अकेली का मन न लगता।"

पतिया के सिर से चिन्ताओं का बोझ कुछ हल्का हुआ; उसने संतोष की साँस ली। किन्तु वह अपना आश्चर्य नहीं छिपा सकी।

"तुम यहाँ, घर पर तो ठाकुर के आदमी लट्ठ लिए......"

"चुप।............थोड़ी देर मे रेल आने वाली है। उसी में बैठ कर बातें करेंगे। मैं तो अपना टिकिट भी ले आई हूँ ठहर, तेरा भी ले आती हूँ।"

रेल में बैठ दोनों ने संतोष की साँस ली। डिब्बे में आस-पास बैठ आदमी ऊँघ रहे थे। पतिया ने बात छेड़ी, "हाँ तो ठाकुर की बात ?"

"छोड़ो भी उस कलमुंहे की बात पतिया भौजी। कंजूस मक्खी-चूस कही का, जेवर गहने तो सब समेट लायी, बस एक बात मन की मन में रह गयी—उस्तरा होता तो उसकी नाक, कान और मूँछो के बाल काट कर गठरी मे बाँध लाती। खूसट कहीं का, मुझे जहर देने की सोच रहा था—जान से मारना चाहता था।"

"हाय राम !" पतिया का मुँह खुला का खुला रह गया।

"सचमुच बहुत बुरा आदमी है ठाकुर, वो तो जाने माँ ने उसके साथ कैसे निभा दी। वैसे तो सारी रात नहीं सोने देता था और जब मैं कहती, 'ठाकुर मुझे गहने नही दोगे,' तो साधु-महात्माओं की तरह थूँथनी ऊपर उठा कर कहता, प्यारी मोहिनी, यह सब तेरे ही तो है। एक दिन तुम्हे ही यह गहने और नकदी से भरी तिजोरी सौंप कर परमधाम की यात्रा करूँगा। चोर-उचक्को का गाँव ठहरा, तुझे गहने पहने देख चोर-डाकू आकर तुझे उठा ले गये तो बता मैं क्या करूँगा। तू बड़ी भोली है, जरा अक्ल से सोच तेरी जरा सी जिद दोनों पर मुसीबत ला सकती है। सब्र का फल मीठा होता है। इन सबको मैं छाती पर रख कर थोड़े ही ले जाऊँगा—सब तुम्हे ही मिलेंगे।"

"ठीक तो कहते थे।" पतिया बोली।

"मैं भी पहले यही सोचती रही कि बुड्ढा ठीक कहता है।" मोहिनी ने कुछ देर रुक कर कहा—'पर भौजी ठाकुर सनकी है, इस बात का पता मुझे किसी तरह लग गया। एक के बाद एक कुल

मिला कर तीन उनकी ब्याहता, एक माँ और एक मैं, पाँचों की पाँचों पर उसे शक रहा कि कहीं यह गहने-पैसे के लोभ में उसे जहर न दे दें............।"

"हाय माँ !" अचरज से मुँह बनाया पतिया ने।

"हाँ भौजी, इस खूसट के बेसिर-पाँव के बहम का किसी ओझे हकीम के पास इलाज नहीं था। वह सदा इसी सनक से परेशान रहा और उसकी तीनों ब्याहताओं को उसकी इसी सनक के कारण प्राण देन पड़े। तनिक धीमे स्वर में मोहिनी बोली—"अपनी तीनों ब्याहताओं को उसने जहर देकर मारा।"

"हाय दैया।" सचमुच, पतिया का हृदय जोरों से धड़कने लगा।

मोहिनी कहती रही।

"और आज की रात जहर पीने की मेरी बारी थी।

पतिया भय से सिहर उठी। उसने मोहिनी की बाँह पकड़ कर अपनी छाती से सटाते हुए कहा—

उस मुँह झोंसे की मूँछों में आग लगे।'

मोहिनी मुस्करा दी।

"भौजी मै औरों की तरह बुढ़िया थोड़े ही थी। मैंने उसके सारे कुकर्मों का पता लगा रखा था। साँझ होते ही वह मुझे कोठे में खींच ले गया और ऐसा लाड़-प्यार दिखाया जैसा कभी न दिखाया था। तिजोरी खोल कर मुझे सारे गहने पहनाये..........।"

"तब तो...?"...पतिया ने बात काटी।

"तब तब' कुछ नहीं भौजी, जिस रात वह औरत की जान लेता था, ऐसा ही करता था। इस बात को मैंने उस बुढ़िया छिनाल दाई के पेट से निकाला जो उसे इस काम के लिए जहर लाकर देती थी। साँझ हुए बुढ़िया आई और ठाकुर के साथ बैठक में बैठी घुसर-पुसर करती रही और फिर बाहर से लौट गयी। मैं तभी समझ गई कि

दाल मे कुछ काला है जरूर। जब उसने मुझे कोठे में बन्द करके लाड़-प्यार जताना शुरू किया। मेरी कट्टो, मेरी कोयल, मेरी बत्तख...' तो मैंने मन ही मन कहा 'मौसा' मेरा नाम भी मोहिनी है, ऐसी नौटंकी दिखाऊँगी कि उम्र भर न देखी होगी। उसने मुझे सारे गहने पहनाये। मैं चुप रही। फिर मुए ने आधीरात तक अपना कचूमर निकाला। मैं दम ऐसे पड़ी रही मानो हार कर ढह पड़ी हूँ।

"फिर ?" उत्सुकता से पतिया ने पूछा।

"उसकी सांस खर्र-खर्र चल रही, पर मुझे दुलराते हुए बीस साल के छैला की तरह बोला, थक गई मेरी रानी, लेटी रह, मैं तेरे लिए दूध लाता हूँ। रसोई कोठे से कुछ दूर थी। वह गया दूध लेने, और मैंने कोठे के बाहर पक्के फर्श पर दो सेर पक्का कड़ुवा तेल बखेर दिया। अँधेरा तो था ही, ठाकुर दूध लेकर जैसे ही कोठे के पास आया धड़ाम से चारों खाने चित्त गिरा और जहर मिले दूध का लोटा दूर चौक में लुढकता-पुढकता चला गया। बड़ी मुश्किल से हँसी रोकी मैंने, वैसे ही दम साधे पड़ी रही जैसे पड़ी थी।"

कुछ क्षण रुक मोहिनी बोली।

"एक हाथ गले पर रखे ठाकुर लँगड़ाता हुआ आकर बोला, 'यह बाहर फिसलन कैसे हुई ?'

मैंने कह दिया :

टहलवे से तेल बिखर गया था।

धम्म से धरती बैठते हुए उसने टहलवे की सात पीढ़ी कोस डाली। मैं फिर बोली :

'राजा जी, दूध लाकर नहीं पिलाओगे ?'

तन-बदन में आग ही तो लग गयी उसके।

पी ले जाकर अपने आप, मेरे हाड़-गोड़ टूट गए है और खुद मुसरी

पड़ी-पड़ी मस्ता रही है। उठ और सब गहने तिजूरी में बन्द कर चाबी मुझे दे।

मैं उठी बाँहों में भर कर फिर ठाकुर को उठाया।

मेरे राजा, मैं वारी जाऊँ, मुझे क्या पता था कि चोट जोर से लगी है। उठो बिस्तर पर लेटो।

ठाकुर समझा कि मैं सचमुच ही उस पर मर मिटी हूँ। पलँग पर लिटा कर मैंने उसके कूल्हे दबाना शुरू कर दिये। मरे के बुरे दिन आये थे, गहना-रुपया और तिजोरी भूल कर वह कुछ ही देर में खुर्राटे भरने लगा। बस, मैंने भी गहने-रुपयों की पोटली बाँधी और हवेली के पिछवाड़े से निकल कर चमारों के मरघट- से होती ढाक के जंगल में घुस गयी।"

"तुझे डर नहीं लगा?" पतिया ने पूछा।

"डर किस बात का?"

"अगर ठाकुर के आदमी तुझे पकड़ लेते तो?"

मोहिनी हँस दी।

"भौजी, मैं कोई ठाकुर की ब्याहता सती ठकुरानी तो हूँ नहीं। जो कोई पकड़ लेता, दो-चार दिन उसके साथ रह कर उसकी छाती भी ठण्डी कर देती।"

यह सुन कर पतिया हँस पड़ी।

"अगर ठाकुर खुद ही पकड़ लेता तो?"

"ऐसी पटखनी देती कि रहे सहे हाड़-गोड़ भी टूट जाते। माँ कहा करती थी कि ठाकुर का बदन कसरती है, और बुढ़ापे में भी जवानी

मार कर बुझा दी। फिर जो ठाकुर को दो-चार पटकी दी तो उसे छठी का दूध याद आ गया। बस, फिर मैं उसकी छाती पर चढ़ बैठी। बोल, कौन है तू? कराहते हुए वह बोला—अरी तुझे भूतनी चढ़ी है, देख तो जरा मैं······मैं हूँ तेरा ठाकुर।"

मोहिनी के साहस का यह चुटकला सुन कर पतिया ने उसाँस भरी।

"बड़ी हिम्मत है तेरी।"

"हिम्मत बिना दुनिया में जीना दूभर है। अच्छा भौजी शहर चल कर मेरे साथ ही रहेगी ना?"

"हाँ।"

"कभी मेरा साथ तो न छोड़ोगी?"

"नहीं।"

इसके बाद दोनों चुप हो गईं और रेल की खड़-खड़ सुनने लगी। रेल दौड़ी जा रही थी, अपने आप में भूली दोनों अभागिनों को जाने किस जलते हुए नरक कुण्ड में पटकने के लिए!

मोहिनी ने अपने लिए एक सीमा निर्धारित कर ली और उस सीमा का वह पूरा ध्यान रखती। ठीक उस समय जब रूप के खिलाड़ी यह समझते कि मोहिनी को उन्होंने अपने हाथ में कर लिया है और यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि जब चाहें उसे अपनी चुटकी में मसल दें, वे देखते कि मोहिनी उनके हाथ और आँखों को धोखा दे, दूर खड़ी, अपनी मोहक हँसी हँस रही है !

पतिया की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ा था। चौका-बरतन करते उसका जीवन बीता था और अब भी यही वह करती थी, मोहिनी के कोठे पर आने-जाने वाले लोग उसे मोहिनी की दासी के रूप में जानते थे। मोहिनी भी सबके सामने पतिया से इसी तरह का बरताव करती थी, मानो वह दासी ही हो। लेकिन.........

मोहिनी ने पतिया के साथ अब फिर अपना पुराना खेल खेलना शुरू कर दिया था। स्वामी जिस तरह के कपड़े पहनता था, मोहिनी ने वैसे कपड़े बहुत से बनवा लिए थे। रूपशिखा के चारों ओर मँडराने वाले पतिंगों से छुट्टी मिलने पर वह पतिया का सिंगार करती। उसे वे सब कपड़े पहनाती और इसके बाद पतिया को सामने बैठाकर प्रेम का अभिनय करती। आवेश में आकर उसे अपनी दोनों बाँहों में कस कर जकड़ लेती और पतिया की उदासीनता से असन्तुष्ट हो, छिटक कर अलग हो जाती। मोहिनी के नथुने फड़कने लगते, भौंहों में बल पड़ जाते, होठों के दोनों सिरों पर झाग आ जाते और पतिया को जली-कटी सुनाने लगती।

"तुम तो पत्थर हो भौजी, बिल्कुल पत्थर !" झुँझला कर मोहिनी कहती—"देखो, यह मेरा हृदय कितनी जोर-जोर से धड़क रहा है। ऐसा मालूम होता है जैसे लपटें लप-लपा रही हों !"

कभी मोहिनी का क्षोभ और भी बढ़ जाता। उसके मन में

# २१

पतिया ने मोहिनी का वादा पूरा किया और पूरी तरह उसका साथ दिया। जब तक पास में गहनों की गरमाई रही, तब तक पथ लक्षित है या अलक्षित, इसकी कोई विशेष चिन्ता न मोहिनी को थी, और न पतिया को। दोनों यही समझतीं कि उन्हें किसी से कुछ लेना-देना नहीं है, और न ही किसी का कोई ध्यान रखना है। लेकिन जब हाथ खाली हो गये तो उन्होंने देखा और अनुभव किया कि इस तरह की मनमानी नहीं चलेगी।

अन्त में अनेक बार इधर-उधर की ठोकरें खाने के बाद, मोहिनी और पतिया अपने एकमात्र ठिकाने पर आ गयीं। मोहिनी ने समाज के बीच अपनी 'मोहिनी' को प्रतिष्ठित करने के लिए सरकारी लाइसेंस प्राप्त किया, और दोनों बाजार का एक कोठा लेकर रहने लगीं।

मोहिनी की ओर शीघ्र ही नगर के युवकों का ध्यान आकर्षित हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि अपने को मोहक रूप में प्रदर्शित करने की कला में वह विशेष रूप से दक्ष थी। इसके अतिरिक्त उसमें एक बात और थी। वह यह कि चोर-दरवाजे से रूप के खिलाड़ियों के हृदय में प्रवेश करने और फिर वहाँ से वेदाग निकल जाने में भी मोहिनी बहुत होशियार थी। वह सब कुछ करती लेकिन अपना दामन लहराते और साफ बचाते हुए।

मोहिनी ने अपने लिए एक सीमा निर्धारित कर ली और उस सीमा का वह पूरा ध्यान रखती। ठीक उस समय जब रूप के खिलाड़ी यह समझते कि मोहिनी को उन्होंने अपने हाथ में कर लिया है और यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि जब चाहें उसे अपनी चुटकी में मसल दें, वे देखते कि मोहिनी उनके हाथ और आँखों को धोखा दे, दूर खड़ी, अपनी मोहक हँसी हँस रही है !

पतिया की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ा था। चौका-बरतन करते उसका जीवन बीता था और अब भी यही वह करती थी, मोहिनी के कोठे पर आने-जाने वाले लोग उसे मोहिनी की दासी के रूप में जानते थे। मोहिनी भी सबके सामने पतिया से इसी तरह का बरताव करती थी, मानो वह दासी ही हो। लेकिन.........

मोहिनी ने पतिया के साथ अब फिर अपना पुराना खेल खेलना शुरू कर दिया था। स्वामी जिस तरह के कपड़े पहनता था, मोहिनी ने वैसे कपड़े बहुत से बनवा लिए थे। रूपशिखा के चारों ओर मँडराने वाले पतिंगों से छुट्टी मिलने पर वह पतिया का सिंगार करती। उसे वे सब कपड़े पहनाती और इसके बाद पतिया को सामने बैठाकर प्रेम का अभिनय करती। आवेश में आकर उसे अपनी दोनों बाँहों में कस कर जकड़ लेती और पतिया की उदासीनता से असन्तुष्ट हो, छिटक कर अलग हो जाती। मोहिनी के नथुने फड़कने लगते, भौंहों में बल पड़ जाते, होठों के दोनों सिरों पर झाग आ जाते और पतिया को जली-कटी सुनाने लगती।

"तुम तो पत्थर हो भौजी, बिल्कुल पत्थर !" झुंझला कर मोहिनी कहती—"देखो, यह मेरा हृदय कितनी जोर-जोर से धड़क रहा है। ऐसा मालूम होता है जैसे लपटें लप-लपा रही हों !"

कभी-कभी मोहिनी का क्षोभ और भी बढ़ जाता। उसके मन में

होता कि पतिया को रूई की तरह धुन डाले। एक बार पतिया को इस जोर से धक्का दिया कि उसके गहरी चोट भी आयी। बाद में मोहिनी बहुत पछताई। आँखों में आँसू भर कहने लगी :

"मुझे माफ करना भौजी। कुछ समझ नहीं पड़ता कि मेरे हृदय को क्या हो गया है। मन करता है कि सारी दुनिया को तोड़-मरोड़ डालूं।"

ऐसा मालूम होता था जैसे मोहिनी कुछ करने के लिए उमड़-घुमड़ रही हो, उसका समूचा बदन भीतर से ऐंठ रहा था। हाथों की मुट्ठियाँ भिंची थीं, भौंहें तनी थी और होंठ फड़क रहे थे।

पतिया सहमी-सी मोहिनी की ओर देख रही थी। जब कभी मोहिनी इस तरह बल खाती और उमड़ती-घुमड़ती थी तो किसी अज्ञात आशंका से उसका हृदय काँप उठता था। लगता था जैसे अब और कोई उत्पात होने वाला है। कौन जाने स्वामी और वह साथी ही आ धमकें, ठाकुर को उनका पता लग जाये, उसके आदमी आकर फिर उसी तरह किवाड़ धड़धड़ाने लगें, और उनसे भागते तक न बने।

मोहिनी ने पतिया को इस बुरी तरह झंझोड़ा और धक्का दिया था कि उसका बदन दुख रहा था। "ऊँह", उसने मन ही मन मोहिनी की बात को दोहराते हुए कहा—"मन करता है कि सारी दुनिया को तोड़-मरोड़ डालूं।" फिर कुछ रुक कर कसमसाती हुई बोली :

"सारी दुनिया को कहाँ, तुमने तो बस मुझे तोड़-मरोड़ डाला है। यह देखो, मेरा बदन कितना दुख रहा है।"

मोहिनी ने अब पतिया की ओर देखा। दुख और वेदना की वह साकार प्रतिमा बनी थी। लगता था जैसे उसके हृदय का, और बदन के एक-एक जोड़ का, समूचा दर्द उसके चेहरे पर आकर जमा हो गया हो। मोहिनी ने एक नई भावना का, सहानुभूति और संवेदना की भावना

का अनुभव किया। पतिया को अपनी ओर खींचती हुई बोली :

अरे नहीं भौजी, तुम्हें तोड़-मरोड़ कर मैं भला कहाँ रहूँगी।"

पतिया मोहिनी के बदन से सटी थी। उसने अपने आपको अलग नहीं किया, बल्कि कुनमुना कर और सटती गयी। मोहिनी उसका बदन सहला रही थी, और कहती जा रही थी :

"मैं भी कितनी पगली हूँ, भौजी। मुझे ध्यान ही नहीं रहा कि तुम भी आदमी हो, हाड़-मांस की बनी। सच, मुझे लगता है जैसे तुम निरी काठ हो, जिसमें न कभी गुदगुदी उठती है, न कभी दुख-दर्द व्यापता है।"

"मैं चक्की की भाँति पिसती जो रहती हूँ, शायद इसलिए—क्यों ?" पतिया के मुँह से निकला।

मोहिनी ने पतिया की ओर देखा। उसके चेहरे पर जमा दुख और वेदना का वह भाव अब बहुत कुछ तिरोहित हो गया था और एक नयापन उसमें दिखाई दे रहा था। और सचमुच यह नयापन था भी। चक्की की भाँति पिसने के लिए ही जो इस दुनिया में आई हो, उसके मुँह से ऐसी बात.........

"हाँ, शायद इसीलिए", मोहिनी ने कहा, और फिर कुछ रुक कर बोली—"जानती हो भौजी, मैं क्या सोचती हूँ ?"

अब पतिया ने मोहिनी की ओर देखा। पर कुछ थाह न पा सकी। पूछा :

"क्या सोचती हो तुम ?"

"यही कि अगर तुम मर्द होती तो मैं तुम से ब्याह कर लेती।"

पतिया के चेहरे पर हँसी खेल गयी, बहुत ही सुहावनी हँसी। फिर कुछ संयम कर बोली :

"अभी ब्याह से तुम्हारा मन नहीं भरा ?"

"ब्याह हुआ ही कहाँ जो मन भरता। फिर ब्याह से क्या कभी

मन भरता है। लोगों का वश चले तो रोज ब्याह रोज नया ब्याह रचाएँ..."

ब्याह की बात चलते ही पतिया की आँखों के सामने स्वामी की छाया घूम गयी। लेकिन मोहिनी ने इस छाया को टिकने नहीं दिया। बोली :

"ब्याह की बात छोड़ो। मैं कुछ और ही सोच रही थी।"

"क्या सोच रही थी?" पतिया ने उत्सुकता से पूछा।

"मैं सोच रही थी कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम मोहिनी बन जाओ और मैं पतिया?"

एकाएक पतिया की समझ में नहीं आया कि मोहिनी क्या कह रही है—या क्या कहना चाहती है। पूछा :

"इससे क्या होगा?"

"क्या होगा, सो तो मैं नहीं जानती। लेकिन कभी-कभी जी करता है कि मैं पतिया बन कर खूब काम करूँ और तुम्हें मोहिनी बना कर छुट्टा छोड़ दूँ। आखिर तुम भी तो आदमी हो, कोल्हू का बैल नहीं।"

"सो तो है", पतिया ने कहा—"कभी-कभी मेरा भी जी करता है......"

"क्या जी करता है?" मोहिनी ने बीच में ही बात काट कर पूछा।

"कि मैं भी तुम्हारी तरह घूम-फिर सकती?"

"क्या सच?" मोहिनी ने कहा और पतिया को खींच कर और भी अपने हृदय से सटा लिया—"क्या सचमुच तुम्हारा जी करता है?"

लेकिन अगले ही क्षण, इससे पहले कि पतिया कुछ जवाब देती या कुनमुना कर मोहिनी की गोद में और अधिक समाने का प्रयत्न करती, मोहिनी ने उसे अलग करते हुए कहा :

"लेकिन इससे कुछ नहीं होगा, भौजी। दोनों में से एक कोल्हू का बैल फिर भी बना रहेगा। और दूसरा हवा में उड़ता फिरेगा। नहीं

इससे कुछ नहीं होगा।"

"तो फिर?" पतिया ने अस्फुट स्वर में पूछा।

मोहिनी अब चुप थी। ऐसा मालूम होता था जैसे कुछ सोच रही हो। और सोचने पर भी कुछ पकड़ न पा रही हो। फिर एकाएक उसकी आँखों में चमक दौड़ गयी। बोली:

"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनो एक हो सकें। या यों कहो कि तुम पतिया रहते हुए भी मोहिनी बन सको, और मैं मोहिनी रहते हुए भी पतिया बन सकूं।"

पहली बार मोहिनी ने अपने आपको, और पतिया को, इस तरह कुरेदना शुरू किया था। पतिया चकित और मुग्ध-सी, बल्कि कहिये कि भयभीत सी, देख रही थी।

"अच्छा, यह तो बताओ भौजी", बीते जीवन की कोई, अँधेरे या मैल को घिसा देते हुए मोहिनी ने कहा—"कमासिन को, अपनी सुसराल और स्वामी को, धता बताने के बाद तुम फिर लौट क्यों आयीं? मैं तो समझी थी कि तुम कभी नहीं लौटोगी. लेकिन जितनी अचानक तुम गायब हुई थी उतनी अचानक तुम फिर आ धमकी। सो क्यों?"

इस तरह के प्रश्न के लिए, जीवन के उन अँधेरे पन्नों को पलटने के लिए पतिया कतई तैयार नहीं थी। वह एकाएक सिहर उठी। लगा जैसे उसके हृदय को, उसके समूचे शरीर को, किसी ने अपने नुकीले पंजों मे दबोच लिया हो। सुहागरात का वह अंधकार, और बाज की भाँति स्वामी का उस पर झपटना, उसकी आँखों के सामने घूम गया। सिंहवाहिनी देवी के मेले की भी उसे याद आयी—ओसारे मे खून ही खून। खेत मे उल्लू का बोलना, और फिर माँ की मृत्यु······

"भाग्य की मार, और क्या कहूँ", पतिया ने जैसे-तैसे अपने को सँभालते हुए कहा—"न खेत मे उल्लू बोलता, न माँ मरती······"

"ऊँह", मोहिनी ने जैसे मन ही मन कहा—"न खेत में उल्लू

मन भरता है। लोगों का बस चले तो रोज ब्याह रोज नया ब्याह रचाएँ...''

ब्याह की बात चलते ही पतिया की आँखों के सामने स्वामी की छाया घूम गयी। लेकिन मोहिनी ने इस छाया को टिकने नहीं दिया। बोली :

''ब्याह की बात छोड़ो। मैं कुछ और ही सोच रही थी।''

''क्या सोच रही थी ?'' पतिया ने उत्सुकता से पूछा।

''मैं सोच रही थी कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम मोहिनी बन जाओ और मैं पतिया ?''

एकाएक पतिया की समझ में नहीं आया कि मोहिनी क्या कह रही है—या क्या कहना चाहती है। पूछा :

''इससे क्या होगा ?''

''क्या होगा, सो तो मैं नहीं जानती। लेकिन कभी-कभी जी करता है कि मैं पतिया बन कर खूब काम करूँ और तुम्हें मोहिनी बना कर छुट्टा छोड़ दूँ। आखिर तुम भी तो आदमी हो, कोल्हू का बैल नहीं।''

''सो तो है'', पतिया ने कहा—''कभी-कभी मेरा भी जी करता है......''

''क्या जी करता है ?'' मोहिनी ने बीच में ही बात काट कर पूछा।

''कि मैं भी तुम्हारी तरह घूम-फिर सकती ?''

''क्या सच ?'' मोहिनी ने कहा और पतिया को खींच कर और भी अपने हृदय से सटा लिया—''क्या सचमुच तुम्हारा जी करता है ?''

लेकिन अगले ही क्षण, इससे पहले कि पतिया कुछ जवाब देती या कुनमुना कर मोहिनी की गोद में और अधिक समाने का प्रयत्न करती, मोहिनी ने उसे अलग करते हुए कहा :

''लेकिन इससे कुछ नहीं होगा, भौजी। दोनों में से एक कोल्हू का बैल फिर भी बना रहेगा। और दूसरा हवा में उड़ता फिरेगा। नहीं

इससे कुछ नहीं होगा।"

"तो फिर?" पतिया ने अस्फुट स्वर में पूछा।

सोहिनी अब चुप थी। ऐसा मालूम होता था जैसे कुछ सोच रही हो। और सोचने पर भी कुछ पकड़ न पा रही हो। फिर एकाएक उसकी आँखों में चमक दौड़ गयी। बोली :

"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनों एक हो सकें। या यों कहो कि तुम पतिया रहते हुए भी मोहिनी बन सको, और मैं मोहिनी रहते हुए भी पतिया बन सकूँ।"

पहली बार मोहिनी ने अपने आपको, और पतिया को, इस तरह कुरेदना शुरू किया था। पतिया चकित और मुग्ध-सी, बल्कि कहिये कि भयभीत सी, देख रही थी।

"अच्छा, यह तो बताओ भौजी", बीते जीवन की कोई, अँधेरे या मैल को घिसा देते हुए मोहिनी ने कहा—"कमासिन को, अपनी सुसराल और स्वामी को, धता बताने के बाद तुम फिर लौट क्यों आयी? मैं तो समझी थी कि तुम कभी नहीं लौटोगी. लेकिन जितनी अचानक तुम गायब हुई थी उतनी अचानक तुम फिर आ धमकी। सो क्यों?"

इस तरह के प्रश्न के लिए, जीवन के उन अँधेरे पन्नों को पलटने के लिए पतिया कतई तैयार नहीं थी। वह एकाएक सिहर उठी। लगा जैसे उसके हृदय को, उसके समूचे शरीर को, किसी ने अपने नुकीले पंजों मे दबोच लिया हो। सुहागरात का वह अंधकार, और बाज की भाँति स्वामी का उस पर झपटना, उसकी आँखो के सामने घूम गया। सिंहवाहिनी देवी के मेले की भी उसे याद आयी—ओसारे मे खून ही खून। खेत मे उल्लू का बोलना, और फिर माँ की मृत्यु······

"भाग्य की मार, और क्या कहूँ", पतिया ने जैसे-तैसे अपने को सँभालते हुए कहा—"न खेत में उल्लू बोलता, न माँ मरती······"

"ऊँह", मोहिनी ने जैसे मन ही मन कहा—"न खेत मे उल्लू

बोलता न माँ मरती……"

फिर प्रकट रूप में बोली :

"नहीं भौजी, खेत में नहीं—उल्लू तुम्हारे दिल में बोला था। मुझे देखो न। मेरा तो ब्याह ही उल्लू से हुआ था। फिर भी मेरे हृदय मे कभी उल्लू नही बोलता।"

"उल्लू से ब्याह हुआ था ?" पतिया ने पूछा।

"हाँ, उल्लू से। ऐसे वैसे नहीं, निरे उल्लू से। लेकिन मैं किसी पुराने पीपल की खोह तो थी नहीं जिसमें वह डेरा डाल पाता। सो मैंने वह कन्नी काटी कि बस मूड़ हिलाता रह गया।"

"अरे बाप रे !" अनायास ही पतिया के मुँह से निकला।

"अरे बाप रे माँ रे—तुम तो बस यही करती रहोगी", मोहिनी ने कहा—"और सच भौजी इसीलिए तुम्हारे हृदय में उल्लू बोलता है।"

पतिया का ध्यान अब उल्लू की ओर नहीं था, और वह एक अजीब हल्कापन अनुभव कर रही थी। उसका ध्यान अब दूसरी ओर चला गया था—सिंहवाहिनी देवी के मेले की ओर, और उसे यह देख कर खुद अचरज हुआ कि इस बार खून से भरे देवी के ओसारे का नहीं, बल्कि उस पंडाल का चित्र उसकी आँखों के सामने मूर्त हो उठा था जिसमें सजी-सजाई पतुरियों का नाच हो रहा था। तबला, मंजीरा सारंगी बज रही थी और……

तभी मोहिनी की आवाज ने उसे चौंका दिया। वह कह रही थी :

"और तुम्हारा वह स्वामी……वह क्या किसी उल्लू से कम है……"

"जी हाँ," पतिया ने सँभाला लेते हुए कहा—"तुम्हें वह बहुत प्यार करता था।"

"प्यार करता था ?"

"हाँ, बहुत प्यार करता था", पतिया ने कहा—"आखिरी बार

जब वह आया था तो उसने मुझे एक फोटो दिखाया था।"

"किसका था वह फोटो ?"

"सो तो पता नहीं। लेकिन हू-ब-हू तुमसे मिलता था जैसे खुद तुम्हीं हो।"

"सच ?" मोहिनी ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ सच। लेकिन था वह किसी दूसरी स्त्री का। कहता था कि पति की मार सहते-सहते वह तंग आ गई थी। मायके में उसके कोई रह ही नहीं था जो वहाँ जाकर जान बचाती। जब और कुछ नहीं सूझा तो कुएँ में डूबने चली……"

"झूठ……एकदम झूठ ?" एकाएक मोहिनी के मुँह से निकला।

"झूठ क्या ?"

"हाँ, एकदम झूठ। वह मुझसे कभी नहीं मिल सकता।"

"क्या नहीं मिल सकता ?"

"उस स्त्री का फोटो। तुम्हीं बताओ, मैं क्या कभी कुएँ में डूबने चली थी ? और मरना तो दूर, कौन मरदुवा है जो मेरे बदन को छू तक सके ?"

सो तो पतिया जानती थी। रोज ही देखती थी। बाजार का कोठा आबाद करने के बाद भला कोई अपना दरवाजा कैसे बंद रख सकता है, और किसी को आने से कैसे रोक सकता है। सभी काट-छाँट और रंग-रूप के लोग उनके यहाँ आते थे—जैसे यह उनकी खाला का घर हो। लेकिन मोहिनी भी उनमें से किसी को चाचा, किसी को ताऊ और किसी को भतीजा बनाकर वह खेल खिलाती थी कि बस। यहाँ ही क्यों, गाँव में भी वह कुछ कम कौतुक नहीं करती थी। गाँव के लडके-लंभाड़ों से लेकर ठाकुर तक को कैसा छकाया था उसने ?

"तुम्हारी जगह अगर मैं होती", मोहिनी कह रही थी—"तो उसका गला घोंट देती।"

"किसका गला घोट देती ?" पतिया ने पूछा ।

"स्वामी का—और किसका ।" मोहिनी ने कहा—"और तुम—और तुम्हारे हाथ क्या कुछ कम मजबूत हैं ? कितना काम करती हो तुम इन हाथो से । चाहो तो दुनिया को उलट-पलट डालो ।"

अनायास ही पतिया ने अपने हाथों की ओर देखा—उन हाथों की ओर जो इतना काम करते थे, और इतना काम करते हुए जिनके अस्तित्व और शक्ति सामर्थ्य से वह अपनापा नही कायम कर सकी थी, कभी इस भावना ने उसके हृदय में सिर नही उभारा था कि गर्व के साथ कह सके—ये मेरे हाथ हैं जो इतना काम करते हैं ।

अपने होते हुए भी उसके हाथ जैसे उसके अपने नही थे—ऐसे हाथ जो गर्व के साथ काम करना ही नही, काम करने मे इन्कार करना भी जानते हों ।

पतिया ने अपने इन हाथों पर नजर डाली । उसकी मुट्ठियाँ भिंची और भिंचती ही चली गयी । काश कि उनकी पकड मे उस समय कोई चीज होती । लेकिन सिंहवाहिनी देवी उनसे दूर थी, खेत में बोलने वाला उल्लू उनसे दूर था, और स्वामी.........

"पता नही वह कहाँ हैं", पतिया ने कहा—"शायद ठाकुर के आदमी उसे पकड़ कर ले गये ।"

"पकड कर ले गये तो क्या हुआ", मोहिनी ने कहा—"होगा तो इसी दुनिया में । और यह तुम गाँठ बाँध लो, उससे भेंट होगी जरूर, वह बच कर जा नहीं सकता ।"

□ □ □

● जो माँ के मरने के बाद, उनकी आखिरी इच्छा पूरी करने के लिए पुनः बिन बुलाए ससुराल चली जाती है, जहाँ उसका पति भाग गया होता है, सास का यौवन ढल जाने के कारण उसका प्रेमी ठाकुर रामदीन उसे त्याग दिये रहता है और उसकी ननद मोहिनी बन-ठन कर गाँव के लडकों से आँखे लडाती दिन भर निठल्ली घूमती रहती है, लेकिन किसी की पकड़ मे नही आती और ससुराल जाने के नाम पर कुएँ में कूदने की धमकी देती है।

● जो अपनी ननद के ठीक विपरीत दूसरों का चौका बरतन करके घर का खर्चा चलाती है और सास का प्यार भी पाती है।

● जिसका पति स्वामीदीन, जो अब लडकियो का धंधा करता है, एक दिन लौटता भी है, तो उसे वह अपनी धर्म-बहन कहता है, और उसे बाजार मे बेचने की योजना बनाता है, जो सफल नही हो पाती।

● जो अपने कर्मठ हाथो पर आस्था रखती है और अपनी ननद के उकसाने पर भी वह उसके रास्ते पर नही जाती।

● ऐसे ही तानों-बानों से बुनी गई पतिया की यह राम-कहानी, केदार जी ने स्थानीय रंगों से रंग कर, अपनी शोषित जन-पक्षधर जीवन-दृष्टि से सहला कर, जीवन्त और टकसाली भाषा में प्रस्तुत की है, जो भारतीय ग्रामीण नारी की त्रासदी की एक प्रमाणिक दस्तावेज है।

—डॉ० अशोक त्रिपाठी